जगत में जीव कितने हैं ?

प्रस्तावना

हिन्दू धर्म के शास्त्र अद्वैत को परम तत्त्व मानते हैं। अद्वैत यानी दो तत्त्व नहीं है, फिर भी प्रत्यक्ष प्रमाण से, अनेक दिखते हैं। अतः यह विचार करने जैसा विषय है। और कुछ वर्ष पहले पश्चिम के देशों में ऐसा माना जाता था कि जीव अनेक हैं और वस्तु भी अनेक हैं। लेकिन ईसवी सन् १९०५ में प्रो. आइंस्टाइन ने सापेक्षवाद की जो खोज की है उससे सबके पहले के ज्ञान में बदलाव आया है। It is called one man's revolution in the whole world. उससे देश और काल सापेक्ष हो गए हैं। उसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के अच्छे तत्त्व चिंतक भी कहते हैं, कि तत्त्व एक है, यानी अद्वैत सच्चा है और इससे जीव भी एक है। फिर भी प्रत्यक्ष प्रमाण से अनेक दिखते हैं। अतः इस विषय में पुनः अधिक विचार करने की जरूरत रहती है और हमारे ज्ञान के लिए सच्चा प्रमाण खोजने की भी जरूरत रहती है। इस हेतु इस पुस्तक में पूर्व की और पश्चिम की विचारसरणी संक्षेप में समझायी गयी है। सच्चे विचार की आदत बनाये बिना मनुष्य के जीवन में ऊँचा पुरुषार्थ नहीं हो सकता। अतः इस पुस्तक में शास्त्र की दृष्टि से, युक्ति से, अनुभव से और साइंस से उपरोक्त विषय पर विचार किया गया है। इसमें किसी विषय को समझने में पाठकों को कठिनाई महसूस हो तो वे पुनः संपूर्ण पुस्तक को पढ़ें। यह कहानियों की पुस्तक नहीं है। इसमें गंभीर विषयों का विचार है अतः उसे एकाग्र चित्त होकर समझने की आदत बनानी चाहिए। जो ऐसी ऐसी कठिन बातों को समझते हैं वे अपने मन में से बहुत सारी शंकाओ को दूर कर सकते हैं और परम कल्याण का मार्ग प्राप्त कर सकते हैं।

-स्वामी माधवतीर्थ, वेदांत आश्रम
पो.वलाद, (अहमदाबाद – प्रान्तिज रेल्वे)
१५ - १० - १९४९

निवेदन

चिदाभास से प्रतीत होनेवाले प्रमाता की दृष्टि में मैं, तू, वह, जीव, जगत, और ईश्वर सभी है। वास्तव में अजातवाद के अनुसार चिदाकाश के सिवा कुछ नहीं है और यह भी समझाने के लिए कहने भर को सत्य है। जब तक देखनेवाले का ज्ञान ठीक न हो तब तक जीव, जगत और ईश्वर को जानने का सच्चा प्रमाण क्या हो सकता है ? इसकी समझ विकसित न हो तब तक जगत में अनेक जीव प्रतीत होते रहेंगे।

पू. माधवतीर्थ स्वामीजी ने सापेक्षवाद और शास्त्र की दृष्टि से, युक्ति से, और अनुभव की सहायता से सच्चे विचार करने की रीत एवं दृष्टि देने का प्रयास किया है। इसका ज्ञान और समझ गुरुगम्य है। इसलिये महात्मा के सत्संग और गुरुकृपा के बिना उसको सरलता से समझना कठिन है।

आशा है कि पाठकों को यह पुस्तक विचार करने की सच्ची रीत, सच्चे प्रमाण के जरिये अपरोक्षानुभूति के मार्गपर आगे बढ़ने में आशीर्वादरूप बनेगी।

शिवरात्री **वेदान्त आश्रम**

दिनांक ०६-०३-२००८ **वलाद**

जगत में जीव कितने हैं ?

जगत में जीव कितने हैं और उनकी गिनती कैसे करना यह पहले निश्चय करना चाहिए। खटमल, मच्छर, मछली, डास, चींटी, मक्खी, दीमक और दूसरे अनगिनत छोटे और अन्य सूक्ष्म जीव जो की आँख से नहीं दिख सकते उनकी संख्या की गिनती करने बैठे तो गिनती संभव नहीं है। हररोज असंख्य उत्पन्न होते हैं। और असंख्य मरते हैं। ऐसा साधारण मनुष्य की दृष्टि से मालूम पड़ता है।

शास्त्र की दृष्टि से देखें तो उस में यह कहा है कि जो कुछ है वह विराट पुरुष का स्वरूप है। वेद में पुरुषसूक्त में यह बात स्पष्ट की हुई है। **'पुरुष एवेद ँ सर्वम् यद् भूतंयश्चभाव्यम्'** यानी तीनों काल में सब एक पुरुष रूप ही है। गीता में ग्यारहवें अध्याय में भगवान ने (अर्जुन को विश्वरूप दिखाकर) कहा है कि जो कुछ है - वह मैं हूँ। अतः सिर्फ एक तत्त्व है। और एक की सत्-ता (सत्ता) है।

युक्ति से देखें तो स्वप्न में सोनेवाले को उस समय अनेक जीव दिखते हैं। वह जगता है तब एक जीव रहता है। दूसरे जीवों की सत्ता अर्थात उनका होनापन नहीं था, फिर भी भ्रांति से अनेक जीव दिखते थे। जगने के बाद स्वप्न के अनेक जीवों का एक में लय होता है। फिर से जाग्रत की अवस्था के अनुसार अनेक जीव दिखते हैं।उस समय स्वप्न जैसी भूल होती है। स्वप्न के समय जैसे स्वप्न की भूल का पता नहीं चलता वैसे जाग्रत के समय जाग्रत की भूल का पता नहीं चलता। जिस प्रमाण से जिस वस्तु की सिद्धि हो उस प्रमाण से उसकी निवृत्ति नहीं होती। यानी जिस ज्ञान से अनेक जीव मालूम पड़ते हैं उस ज्ञान से एक जीव मालूम नहीं पड़ेगा। उस समय का हमारा ज्ञान प्रमाण बन जाता है। प्रमाण को अंग्रेजी भाषा में measure कहते हैं। प्रमाण की गलती खोजना इतना कठिन है कि पाश्चात्य विद्वान कहते है कि "हम २००० साल तक गलती में थे और इसवीसन् १९०५ में प्रो.आइंस्टाइन ने हमको सच्चा मार्ग दिखाया।"

पश्चिम के नए साइंस की दृष्टि से देखें तो यह सवाल उठता है कि एक जीव और दूसरे जीव के बीच जो रिक्त स्थान (space) है वह किसने बनाया ? सापेक्षवाद का साइंस कहता है कि वह अवकाश भगवान ने नहीं बनाया, लेकिन देखने वाले मनुष्य के देह के अभिमान से बनता है। The space of percepts like the percepts is private. यानी दो जीव के बीच का अवकाश देखनेवाले की दृष्टि से (अर्थात उसके प्रमाण में से) निकलता है। स्वप्न में दो जीव के बीच जो अवकाश दिखता है वह भगवान का बनाया हुआ नहीं है। लेकिन स्वप्न का जीव (प्रमाता) अपने लिए एक स्थान लेता है और दूसरे जीव वह स्वयं नहीं है ऐसा ज्ञान धारण करता है। तब बीच का अवकाश बनता है। लेकिन जाग्रत के प्रमाण से स्वप्न में दिखनेवाला बीच का अवकाश चला जाता

है। जाग्रत के अनुभव के बारे में सापेक्षवाद का साइंस (Theory of relativity) कहता है कि देखने वाला मनुष्य जो कुछ देखता है वह कोई वस्तु नहीं है पर घटना (event) है। और घटना के हिस्से नहीं बन सकते। अतः अनेक वस्तु नहीं बनती। उनका सिद्धांत निम्नलिखित है।

Events are not penetrable as matter is supposed to be. Space - time is not the framework of the world of nature but of the world of our sense- perception. The laws of nature tell us nothing about nature but certainly something about ourselves.

यानी देश और काल जगत में नहीं है लेकिन जगत और हमारे संबंध में रहते हैं।

अतः जिसको अनेक जीव दिखते हैं उसे सिद्ध करना चाहिए कि उसने अनेक जीव कैसे देखे। प्रत्यक्ष प्रमाण सच्चा नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण में अनेक गलतियाँ होती है। जैसे कि :-

१. सूर्य पृथ्वी से बड़ा है, फिर भी छोटा दिखता है।

२. चंद्र पर दूज, तीज, चतुर्थी नहीं है फिर भी यहाँ से दिखती है।

३. पृथ्वी सूर्य के इर्दगिर्द घूमती है। फिर भी प्रत्यक्ष रूपसे घूमती हुई दिखती नहीं है।

४. प्रो. आइंस्टाइन ने गणित से सिद्ध किया है और फोटो से साबित हुआ है कि तारे जहाँ है वहाँ नहीं दिखते और जहाँ नहीं है वहाँ दिखते है।

५. रज्जू में सर्प दिखता है, सीपी में रूपा दिखता है, जल नहीं हो वहाँ (मृग)जल दिखता है, और ठूंठे में पुरुष दिखता है, इन बातों में प्रत्यक्ष प्रमाण गलत सिद्ध होता है।

६. हम जब सूर्य को देखते हैं तब आठ मिनट पहले का सूर्य हमको दिखता है। क्योंकि सूर्य के तेज को पृथ्वी पर आने में आठ मिनट लगते है। सूर्य का तेज सूर्य से निकलने के बाद सूर्य का नाश हो जाए तो भी हमको आठ मिनट तक सूर्य दिखता रहेगा। अतः सूर्य के विषय में हमारे ज्ञान की जाँच करें तो वह कोई चीज (object) नहीं है, पर एक बनाव अथवा घटना (event) है यह कहना चाहिए। ऐसे ही हम किसी मनुष्य को देखें अथवा पहाड़ को देखें तो उसके रूप के तेज की किरणको हमारी आँख तक पहुँचने में देर लगती है। अतः हम किसी चीज को नहीं देखते, अपितु घटना (event) को देखते हैं।

७. घटनामें देश-काल साथ रहते हैं। और जैसी घटना वैसे देश-काल बन जाते है। जो घटना एक देखनेवाले (observer) को एक प्रकार के देश-काल वाली लगे वह अन्य देखनेवाले को दूसरे प्रकार के देश-काल वाली लगती है।

अतः प्रत्यक्ष प्रमाण सच्चा नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण से जैसी वस्तु हो वैसी नहीं दिखती। फिर भी उस प्रमाण से व्यवहार चलता है। जैसा स्वप्न में बनता है वैसा जाग्रत में बनता है।

दूसरे मनुष्य कैसे हैं यह जानना हो तो सिर्फ हमारे ज्ञान पर पूरा आधार है। सामनेवाले के मन में क्या विचार चलते हैं हम नहीं जान सकते। दूसरे मनुष्य के साथ बातें करने पर उसके हाथ की गति आँखें इत्यादि से और वाणी के आधार से कुछ अनुमान उसके बारे में कर सकते है। फिर भी दूसरे मनुष्य के बारे में संपूर्ण ज्ञान नहीं मिल सकता। हमारे ज्ञान के अनुसार दूसरे को जानने का प्रयास करते है। अतः प्रथम हमारा ज्ञान ठीक है कि नहीं उसकी जाँच करनी चाहिए। दूसरे की बातें मान लेना एक बात है, उसके विषय में ठीक से विचार करना यह दूसरी बात है और अपनी विचार शक्ति ठीक है कि नहीं उसकी जाँच करना यह तीसरी बात है।

अब पुनः शास्त्र के प्रमाण को लें तो श्रीमद्भागवत में चतुःश्लोकी भागवत में भगवान ब्रह्माजी से कहते हैं कि पहले मैं ही था, बादमें भी मैं ही हूँ और अंत में भी मैं ही रहूँगा। भागवत में एकादश स्कन्ध में हंसगीतामें (११-१३- २२) जब हंसावतार भगवान ब्रह्माजी और सनकादि के सामने प्रकट होते हैं तब ब्रह्माजी हंस को पूछते हैं कि आप कौन हो ? उसके उत्तर में भगवान हंस कहते हैं कि "यदि वस्तु एक ही है तो आप प्रश्न किसको पूछते हो, और वस्तु एक ही है इसलिये मैं भी कैसे उत्तर दे सकता हूँ ? यहाँ एक जीववाद का सिद्धांत अंगीकृत किया हुआ है। जो अनेकत्व दिखता है वह उपाधि से दिखता है। जैसे कि बरसात के समय में पानी के अनेक डबरे बन जाते है जिनमें उस समय अनेक सूर्य दिखते हैं, लेकिन वास्तवमें सूर्य एक है ।यहाँ अनेकत्व पानी की उपाधि के कारण मालूम पड़ता है। ऐसे ही मनुष्य भी पानी की बूंद से बनता है, उसमें एक सर्वव्यापक चैतन्य का प्रतिबिंब पड़ता है। जिससे जितनी पानी से बनी हुई उपाधियाँ हो उतने जीव मालूम पड़ते हैं लेकिन वास्तवमें चैतन्य एक ही है। थोड़े जीव मर जाये तब पानी के उतने डबरे सुख गये उस तरह जानना है। उपाधि के धर्म आने से या जाने से अधिष्ठान को कुछ नहीं होता।

युक्ति से देखें तो सब खुद को "मैं" कहते हैं। और "मैं" का बहुवचन नहीं होता। "मैं" का बहुवचन “हम” करते हैं तो साथ में “तू” और “वह” लेने पड़ेंगे। अतः “मैं” एक है। लेकिन झूठा “मैं” दूसरे “मैं” को “तू” कहता है। कुछ लोग ऐसा भी सवाल करते हैं, कि यदि जीव एक हो तो एक के सुख से दूसरे को सुख होना चाहिए और एक के दुःख से दूसरे को दुःख होना चाहिए और एक के मोक्ष से सबको मोक्ष मिलना चाहिए लेकिन ये अंतःकरण के धर्म है। सुखदुःख अंतःकरण को होता है। अंतःकरण नींद में नहीं रहता है। इसलिए उस समय सुखदुःख नहीं होते। नींद में सिर्फ अज्ञान रहता है इसलिए स्वरूप का भान नहीं होता। मोक्ष भी अज्ञान का करना है। अज्ञान यानी आत्मा का अग्रहण। जाग्रत में आत्मा के अग्रहण के कारण अन्यथा ग्रहण होता है और अन्यथा ज्ञान होता है। विशेषकर जाग्रत

में और स्वप्न में जीव स्वयं को देश और काल की सीमा में लाता है। तब विपरीत भावना उत्पन्न होती है।

सापेक्षवाद का साइंस भी कहता है कि :

When the individual time and space of any particular individual are welded together, the individual is found to drop out altogether, the constituents are subjective to a particular individual but the product is objective.

(New background of science by Sir James Jeans, page 98)

अर्थात जब कोई जीव देश-काल के परिच्छिन्न भाव में आ जाता है तब सच्चा जीव कौन है उसका पता नहीं चलता। क्योंकि उस समय देश-काल का अध्यास होता है।

पुनः शास्त्र की दृष्टि से देखें तो ईश उपनिषद् में प्रथम मन्त्र में कहा है कि :-जगत में जो कुछ भी है वह ईश्वर से आच्छादन करने योग्य है यानी एक ईश्वररूप है। रज्जू में गलती से दिखनेवाले सर्प, दंड, धारा, माला रज्जू के ज्ञान से ढक देने योग्य है। ऐसे ही ईश्वर के ज्ञान से जगत त्रिकालिक निषेध करने योग्य है।

युक्ति से देखें तो कभी लाल फूल के पास स्थित स्फटिक लाल दिखता है। उस समय किसी अंतराय से लाल फूल का दर्शन न हो तो स्फटिक लाल है ऐसी बुद्धि हो जाती है। ऐसे ही जिस समय आत्मा से अंतःकरण का पृथक दर्शन नहीं होता उस समय कर्तृत्व आदि धर्मों की आत्मा में प्रतीति होती है। उस समय देश-काल की परिच्छिन्नता उत्पन्न होती है और एक के स्थान पर अनेक जीव दिखते हैं। भूल से ग्रस्त मनुष्य को भूल में रहते हुए अपनी भूल खोजना मुश्किल होता है।

साइंस की दृष्टि से देखें तो वे अब जाग्रत के अनुभव को भी स्वप्न के जैसा कहते है। बी. रसेल कहते है कि The mistake lies in taking our percepts to be the physical world. The dreams which we call waking perceptions have only a very little more resemblance than the fantastic dreams of sleep.

अर्थात् जाग्रत भी एक स्वप्न जैसा ही है। जैसे सोया हुआ पुरुष अपने कर्म के प्रतिबंध के कारण अपने स्वप्न की शीघ्र विनाशशीलता को नहीं जानता उसी प्रकार ब्रह्मादिक भी अपनी दृष्टि से, इस जगतरूपी स्वप्न को कर्म के प्रतिबंध के कारण शीघ्र विनाशी नहीं जानते। वैसे ही मनुष्य भी अपने जाग्रत जगत को कर्म के प्रतिबंध के कारण अपनी दृष्टि से शीघ्र विनाशी नहीं जानते। (कर्म का अर्थ event हो सकता है)

पुनः शास्त्र की दृष्टि से देखें तो योगवासिष्ठ में (उत्तरार्ध पृष्ठ क्रमांक - ५१९) कहा है कि वृक्ष में फल, शाखा आदि जो दिखते हैं उसमें बीज सत्ता ही सर्वत्र एक अखंडभाव से स्थित है। ऐसी ऐक्य दृष्टि होने पर शाखा आदि की अलग सत्ता न जानते हुए बीज वृक्ष का कार्यकारणपना कहाँ रहेगा ? वैसे ही एक चैतन्य सर्वत्र सर्वदा विवर्तभाव से स्थित है ऐसी दृष्टि हो जाय तो फिर उसका कार्यकारण भाव कहाँ रहेगा ?

तो फिर भेद क्यों दिखता है ? उसके लिए युक्ति से देखें तो एक स्थान पर घड़ा और दीपक दोनों हो तब यदि घड़े पर आवरण हो तो प्रकाश का घट के साथ व्यवधान (अंतर) हो जाएगा। और दीपक को ढकने से परस्पर दोनों का व्यवधान होगा। जड़ घट आदि की स्व-सत्ता नहीं होने से आवरण नहीं बन सकता लेकिन चेतन के अज्ञान द्वारा आवरण होने से विषय का और चेतन का व्यवधान हो जाता है। ऐसे व्यवधान से विषय में अज्ञातता आ जाती है। अतः किसी भी तरह से चेतन का अज्ञान दूर करना चाहिए। अविद्या का कार्य उसके उपादानभूत अविद्या को तिरोहित कर देता है। इससे वस्तु का प्रकाश हो जाता है और तद्विषयावच्छिन्न चैतन्य में अविद्या का स्वरूप नहीं दिखता। यदि उस अविद्या का स्वरूप दिखे तो विषय का प्रकाश ही नहीं हो सकता। कारण दिखे तो कार्य का स्वरूप प्रकट हो जाय। स्वप्न में यदि अधिष्ठान के स्वरूप का पता चले तो स्वप्न ही नहीं रहेगा। अबाधित लंबे काल का जगत का परिचय ही जगत की सत्यता की भ्रांति की दृढ़ता का कारण है। लेकिन बाधित हुए पदार्थ का लंबे काल का परिचय जगत की सत्यता की भ्रांति की दृढ़ता का कारण नहीं बनता। इसी वजह से जब इस. १९०५ में सापेक्षवाद की खोज हुई तब स्वप्न में से जगने की नाईं पाश्चात्य विद्वानों को लगा कि वे लंबे काल से भूल में पड़े हुए थे।

नए साइंस के अनुसार जीव और जगत को समझने के लिए निम्नलिखित दो रीत प्रो. मीलन बताते है :-

There are two separate ways of attacking the structure of the universe, the one is to make use of every available piece of empirical knowledge known to be valid on the small scale; the other is to begin with the situation actually presented to us by the totality of things without supposing ourselves to know anything (to start with) of the facts used in the first method. In the second method, we attempt a complete reconstruction of physics from the bottom upward on an axiomatic basis. The second method frees itself from the presuppositions tacitly implied in the first method .When these presuppositions are removed, it will be seen that the differing possibilities are different

descriptions of one and the same entity, descriptions which originate from the tacit adoption of different scales of time.

अर्थात् संक्षेप में जगत को समझने के लिए दो रास्ते है :-

१. व्यवहार में हमको जितना ज्ञान मिला हो उसका उपयोग करना।

२. व्यवहारिक ज्ञान के विषय में हम कुछ जानते नहीं यह मानकर सब घटनाओं को एक साथ देखने की और जानने की आदत डालनी चाहिये। इस रीत के अनुसार जगत बिलकुल अलग प्रकार का मालूम पड़ेगा यानी कि देखनेवाले के ज्ञान के देश-काल के अनुसार जगत प्रतीत होगा। अथवा देश-काल की सीमा रखे बिना सब एक साथ भगवान के रूप में जान सकें तो भी सच्ची दृष्टि प्राप्त होती है।

जब किसी भी प्रश्न का उत्तर चाहिए तब प्रश्न ठीक से करना आना चाहिए। भगवान से जीव अलग कैसे हो गया यह प्रश्न करना हो तो भगवान और जीव दोनों का ज्ञान होना चाहिए। भेद के ज्ञान में प्रतियोगी के ज्ञान की जरूरत रहती है। ऐसे ही कोई मनुष्य ऐसा प्रश्न करे कि

१. जगत का क्या होगा ?

२. देश का क्या होगा ?

३. समाज का क्या होगा ?

४. परिवार का क्या होगा ?

५. मेरा क्या होगा ?

लेकिन ये प्रश्न सच्चे नहीं हैं; क्योंकि देश या जगत स्वयं कहते नहीं कि खुद कैसे है। अतः जिस मनुष्य को जिस ज्ञान से जिस जगत का अथवा जिस देश का ज्ञान जिस तरह हुआ उसकी प्रथम जाँच करनी चाहिए। अपने समकालीन सोये हुए पुरुषों को स्वप्न में दिखनेवाली सृष्टि की रचना जैसे अपनी अपनी दृष्टि में बड़े आरंभवाली लगे और दूसरे की दृष्टि में बिल्कुल शून्य ही लगे,वैसे त्रैलोक्य ब्रह्मांड आदि की रचना बड़े आरंभवाली लगे फिर भी अद्वैतभाव से देखनेपर ब्रह्मरूप ही है। स्वप्न में दिखनेवाला पर्वत जैसे अणुमात्र भी जगह नहीं रोकता क्योंकि जाग्रत होनेपर वह जगह भी चली जाती है। वैसे स्वप्न की घटना भी क्षण जितने काल को नहीं रोकती। क्योंकि जाग्रत होनेपर वह काल चला जाता है। इसी प्रकार वर्तमान के सापेक्षवाद के साइंस वाले कहते है कि जाग्रत के पहाड़ किसी जगह को नहीं रोकते, क्योंकि वह देखने वाले की दृष्टि में रही हुई घटना है। और जाग्रत की घटना भी किसी काल को नहीं रोकती क्योंकि काल सापेक्ष है। और एक ही

घटना अन्य देखने वाले को अलग देश-काल वाली लगती है। इस प्रकार देश-काल झूठे होने से अनेक जीव नहीं हो सकते और जगत की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती।

अब शास्त्र का प्रमाण लें तो कठोपनिषद् में नचिकेता यमराज को पूछता है कि मनुष्य मरने के बाद कहाँ जाता है ? उसके उत्तर में यमराज कहते हैं कि :-

मृत्योः स मृत्युंगच्छति य इवनानेवपश्यति (२-१-११)

अर्थ :-जो यहाँ भेद जैसा देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है। वास्तवमें यहाँ कुछ भेद नहीं है। अतः भेद की प्रतीति करानेवाली अविद्या की निवृत्ति करने के सिवा दूसरा कोई कर्तव्य नहीं है।

देह के भेद से जीवभेद की प्रतीति होती है। वह आत्मज्ञान से बाधित होती है। स्वप्नमें एक ही चैतन्य उपाधि भेद से भिन्न दिखता है। जब स्वप्न के विषय का ज्ञान होता है तब प्रमाता चैतन्य, प्रमाण चैतन्य, और प्रमेय चैतन्य विषयरूप हो जाते हैं। इससे प्रमाता प्रमेय जैसा लगता है। दृष्टा दृश्य जैसा लगता है। यानी अविद्या विषय का रूप धारण करती है। जाग्रत में भी ऐसा ही बनता है।

इस बात का युक्ति से और दृष्टान्त से विचार करें तो उल्लू को दिन में अंधेरा दिखता है और उसको भी उस समय अपना ज्ञान सच्चा लगता है। उल्लू को उल्लू की परीक्षा में बिठाया हो तो दिन में अंधेरा है - ऐसा परीक्षा में लिखेगा तो ही पास होगा। ऐसे ही मनुष्य की परीक्षा में मनुष्य अनेक जीव सच्चे हैं ऐसा लिखे तो ही पास होता है।

सर्कस का शेर बकरों के साथ मिलकर ऐसी परीक्षा दे कि सब शेर बकरे जैसे ही स्वभाव वाले होते हैं तो उसकी परीक्षा में उसके जैसे अन्य शेर उसे जरूर पास करेंगे। संक्षेप में भ्रांति की दशा में भ्रांति का बाध नहीं होता इसलिए अनेक जीव जैसा दिखता है। सिर्फ बाधक ज्ञान आये तब भ्रांति का बाध होता है।

लेकिन एक जीव सिर्फ अपना ज्ञान ठीक करने का प्रयास करे और दूसरे जीव वैसे के वैसे रह जाय तो यह तो एक प्रकार का स्वार्थ हुआ ऐसा कुछ लोग मानते हैं। अतः दूसरों का ज्ञान भी ठीक करना चाहिये; ऐसा विचार स्वप्न में किसीको आये कि मुझे जो मनुष्य दिखते हैं, उनका भला करके उनका ज्ञान प्रथम ठीक करना चाहिए तो स्वप्न चलता ही रहेगा। स्वप्न में अपना ज्ञान ठीक हुआ तो दूसरों का ज्ञान ठीक करने का प्रश्न नहीं रहता। ज्ञान की ऐसी कला जाग्रत में भी है। जिस दशा में जिस ज्ञान से दूसरे का भला करने का प्रश्न उत्पन्न होता है वहाँ उस दशा के प्रश्न को ठीक करने की जरूरत है। वेदान्त सिद्धांत मुक्तावलि में कहा है कि एक जीव को दूसरे जीव के ज्ञान अथवा अज्ञान का पता नहीं चलता। अतः एक का ज्ञान ठीक हुआ तो सब का ज्ञान ठीक होता है। क्योंकि

जिस ज्ञान से अनेक दिखते हैं वह ज्ञान ही सच्चा नहीं है। वेदान्त की प्रतिज्ञा यह है कि "एक के ज्ञान से सर्व का ज्ञान हो सकता है।"

नए साइंस पर विचार करते हुए बी. रसेल कहते है कि मेरे ज्ञान के सिवा दूसरे के ज्ञान का मुझे पता नहीं है।

If I refuse to accept nonmental events because they are not verifiable, I ought to refuse to admit mental events in everyone except myself for the same reasons.

यानी मुझे जड़ वस्तु का पूरा पता नहीं है क्योंकि वह अपने स्वरूप को नहीं बताती। ऐसे ही दूसरे के मन के विचार भी मैं ठीक तरह से नहीं जान सकता। वह विचार मुझे किस प्रकार असर करते हैं उतना मैं जान सकता हूँ।

अतः सिर्फ अपना ज्ञान ठीक करने की जरूरत है। जगत कैसा है यह प्रश्न गलत है। जगत को जीव कैसे जानता है यह प्रश्न सच्चा है। जगत में जीव कितने हैं यह प्रश्न भी अपूर्ण है। अनेक जीव कैसे दिखते हैं उसका प्रमाण सच्चा है कि नहीं उसकी जाँच करनी चाहिए। जगत को जानने में जीव की इंद्रियाँ और उसका मन कार्य करते है। और वे सच्ची खबर नहीं देते। एक कटोरी में सफेद पाउडर हो और दूसरी कटोरी में काला पाउडर हो उन दोनों को मिलाने पर राखोड़ी (राख के रंग का) रंग के कण वाला राखोड़ी पाउडर दिखेगा। अब उस पाउडर में बहुत छोटा (कण जितना) जीव घूमता हो तो उसको सफेद दाने अथवा काले दाने दिखेंगे। उसको राख के जैसा रंग दिखेगा नहीं। अतः प्रमाण के अनुसार प्रमेय दिखता है। हाथी की चमड़ी के किसी खड्डे में कोई छोटा जीव रहता हो तो उसको हाथी के संपूर्ण जीवन का पता नहीं रहेगा। वह सिर्फ अपने खड्डे का ही जगत जान सकेगा। हमारे चौबीस घण्टे का दिन उसको शायद सौ साल जितना लंबा लगे। हाथी को भी मनुष्य बहुत लंबा लगता है। क्योंकि उसकी दृष्टि सीधी रेखा में जाती है। वह अधिक ऊँचा नहीं देख सकता। मनुष्य की दृष्टि भी काफी सीमित रहती है और देह के अध्यासवाली रहती है। अतः उससे सच्चा तत्त्व नहीं मिलता। जिस जिस तरह के कर्म में वह कर्ता के रूप में हिस्सा ले, वह कर्म उसको बंधन में डालता है। अतः जो आगे बढ़े है उनके अनुभव के जो प्रमाण शास्त्र में मिलते हैं उस आधार पर मनुष्य के ज्ञान को ठीक कर सकते है।

शास्त्र की दृष्टि से देखें तो, गीता के नौवें अध्याय में भगवान कहते हैं कि (९- ५) "जीव (भूत) मुझमें नहीं है, ऐसा मेरा ऐश्वर्य तू देख।" उसके पूर्व के श्लोक में यानी चतुर्थ श्लोक में कहते हैं कि "जीव मुझमें हैं" और पांचवे में कहते हैं कि "जीव मुझमें नहीं है।" अतः जिस दृष्टि से तत्त्व का विचार किया जाय उस दृष्टि पर संपूर्ण आधार है। चेतन और उपाधि दोनों मिलकर जीव बनता है। स्वप्न

में जैसे उपाधियाँ झूठी होने से उपहित में (चेतन में) भेद नहीं पड़ता इसी तरह जाग्रत में भी उपाधि झूठी होने से चेतन में भेद नहीं बनता। प्रतीति काल में प्रतीत होनेवाला अनुभव उस काल तक ही पहुँचता है। प्रातिभासिक वस्तु में सिर्फ ज्ञात-सत्ता रहती है। और प्रातिभासिक वस्तु निराकार होती है। उसमें अंश-अंशीभाव नहीं बनता। नए साइंस वाले कहते हैं कि

The fact that an event occupies a definite amount of space-time does not prove that it has parts. अर्थात् एक घटना में देश और काल होते है फिर भी उस घटना के हिस्से नहीं हो सकते। The clock of an observer is at himself and records only the epochs of events at himself. अर्थात् हर एक दृष्टा की दृष्टि में उस दृष्टि के अनुसार देश-काल रहते है। जिस घटना का किसीको अनुभव नहीं होता वह घटना नहीं घटती। और किसीको अनुभव हो तो कैसे हुआ उसकी जाँच करनी चाहिए। कुछ तारे इतने दूर होते हैं कि उसका प्रकाश यहाँ पहुँचने में करोड़ों वर्ष लगते हैं। मनुष्य पृथ्वी पर आये उससे पहले उस तारे का तेज वहाँ से निकला हो और हम उस तेज को आज देखें तब तारा उस स्थान पर होगा भी नहीं। ऐसे ही पास में पड़ी हुई वस्तु के रूप और तेज हमारी आँख में पहुँचे तब हम जानते हैं। लेकिन हमारी दृष्टि बदल जाये तो उस रूप का क्या होगा ? स्वप्न में देखी हुई वस्तुएं जाग्रत होनेपर शीघ्र अदृश्य होती हैं और जाग्रत में मृत्यु के बाद जगत नहीं रहता। नींद में और मूर्च्छा में भी नहीं रहता। मनुष्य मरकर तोता हो तो भी सब वस्तुओं के रूप और तेज उसकी दृष्टि में बदल जाते हैं।

तो सृष्टि की कल्पना कौन करता है ? निरूपाधिक आत्मा सृष्टि का कल्पक नहीं हो सकता। वह कल्पक हो तो मोक्ष प्राप्ति और संसार की निवृत्ति संभव नहीं है। अतः अविद्या -उपहित आत्मा ही सृष्टि का कल्पक होता है और ऐसे आत्मा से कल्पा हुआ जगत पारमार्थिक दृष्टि से असत्य है। जिस ज्ञान का विषय बाधित होता हो उसे भ्रांतिज्ञान कहते हैं।

वेदांत सिद्धांत मुक्तावलि में कहा है कि (पृष्ठ क्रमांक २३) स्वप्न में स्वप्नदृष्टा अपने अज्ञान का अनुभव करने पर भी वह अनेक जीव का अनुभव नहीं कर सकता; क्योंकि जैसे दूसरे का ज्ञान अतीन्द्रिय होने से स्वप्नदृष्टा को मालूम नहीं पड़ता वैसे उसको दूसरे का अज्ञान भी मालूम नहीं पड़ता क्योंकि वह भी अतीन्द्रिय है। जाग्रत में भी दूसरे का ज्ञान या अज्ञान ठीक से नहीं जान सकते। लेकिन हमारा ज्ञान अथवा अज्ञान जाना जा सकता है। इससे अज्ञान से अवच्छिन्न जीव का भेद प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। अतः सिर्फ अपने स्वप्न से जगना है। आगे कहे अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण प्रमाण नहीं है लेकिन प्रमाण आभास है।जहाँ भेद भ्रांति की प्रबलता हो वहाँ दृष्टा (observer) अभेद करने में अशक्त हो जाता है।

नए साइंस की खोज पर विचार करते हुए बी. रसेल कहते है, कि :-

To some extent each man dreams his own dream and the disentanglement of the dream element in our percepts is no easy matter. All adaptation to environment might be regarded as learning to dream. अर्थात् हर एक मनुष्य अपने स्वप्न में रहता है और ऐसे स्वप्न जैसी गलती जाग्रत में पकड़ना आसान कार्य नहीं है। हर एक भेद-जनित व्यवहार हमको जाग्रत में स्वप्न बनाना सिखाता है।

शास्त्र की दृष्टि से देखें तो वेदान्त में परिणामवाद माना नहीं है लेकिन विवर्तवाद माना हुआ है। उस दृष्टि से अनेक जीव नहीं बनते। वेदान्त के सिवा अन्य मत यानी सांख्य, योग, जैन, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा आदि में प्रकृति अथवा माया सच्ची मानी हुई होने से द्वैत होता है। और अनेक जीव भी होते हैं। वेदान्त मनुष्य को अद्वैत मार्ग पर ले आता है। अद्वैत का अर्थ ही यह है कि दो नहीं है। विवर्तवाद एवं एकजीववाद का गहरा संबंध है। रज्जु में आरोपित सर्प, दंड, धारा, माला आदि विवेक से नष्ट होनेपर फिर से कोई उत्पन्न नहीं कर सकता। उसी प्रकार अज्ञात आत्मा में दृश्य का आरोप है। अज्ञात आत्मा में दृष्टा-दृश्य नहीं रहते। मांडूक्य उपनिषद् में कहा है कि "आत्मा में आरोपित अन्तःप्रज्ञ, बहिःप्रज्ञ आदि का विवेक करने में प्रवृत्त होनेवाला प्रतिषेधविज्ञानरूप प्रमाण का अन्तःप्रज्ञत्व आदि की निवृत्ति के सिवा तुरीय आत्मा में अन्य कोई कर्तव्य नहीं है। क्योंकि अन्तःप्रज्ञत्व (स्वप्न अवस्था), बहिःप्रज्ञत्व (जाग्रत अवस्था) आदि की निवृत्ति के समय ही प्रमाता आदि भेद की निवृत्ति हो जाती है। वृत्तिज्ञान की स्थिति द्वैत निवृत्ति के क्षण के सिवा अन्य क्षण में नहीं रहती। यदि रहे तो अनवस्था दोष प्राप्त हो। अनात्मा का त्रिकालिक निषेध होता है। अतः उसकी उत्पत्ति, स्थिति अथवा लय नहीं होते। शेष सिर्फ आत्मा रहता है और वह एक है। इस प्रकार जब एक चेतन का बोध हो जाता है और द्वैत के अभाव का बोध हो जाय तब कोई कारण नहीं रहने से जन्म नहीं आता। सिर्फ मिथ्या अभिनिवेश ही जीव के जन्म का कारण है।"

अब साइंस की दृष्टि से देखें तो सापेक्षवाद बताता है कि :-

Time, space, motion, extension, and solidity which characterize material bodies are characters of perception and not characters of the external world. When a man transcends time and space ever so slightly or infrequently, he will experience properties of mind as a whole. The subject and the object by their very interaction become one system and qualify the dualism that appears to exist.

अर्थात् देश, काल, गति, लंबाई, वजन इत्यादि जो अनात्म वस्तु के धर्म लगते हैं वे बाहर के जगत में नहीं है लेकिन दृष्टा की दृष्टि में है। कोई भी देखनेवाला यदि कुछ अंश में भी देश-काल के

बंधन से अतीत हो तो उसे अखंड ब्रह्म के धर्म का अनुभव होने लगता है। उस समय दृष्टा-दृश्य एक हो जाते हैं।

इस प्रकार द्वैत बनता नहीं और अनेक जीव नहीं बनते। द्वैत वस्तु के ग्रहण आग्रह से, मिथ्या अभिनिवेश के कारण अद्वैत चैतन्य सहज आवृत हो जाता है। लेकिन वह अभिनिवेश सच्चा नहीं है। अनेक जीव सच्चे हो तो नींद के समय क्यों चले जाते हैं ? जो वस्तु सच्ची हो उसका निषेध नहीं हो सकता।

और फिर युक्ति से देखें तो अनेक स्वतंत्र जीव हो तो अनेक भगवान जैसा हो जाय। यह अहंकारी जीवन है। अहंकारी जीवन अच्छा नहीं माना जाता, और अहंकार जाने के बाद द्वैत नहीं रहता। द्वैत नहीं होने पर भी द्वैत का ज्ञान रहेगा तो आत्मा का अनुसंधान रहेगा नहीं। देवदत्त बैठा है या देवदत्त खड़ा है उससे देवदत्त दूसरा कुछ बन नहीं जाता। ऐसे ही अखंड विराट स्वरूप बैठा हो या चलता हो उसमें दूसरा कुछ नहीं बनता। इसलिए अखण्ड भाव अखण्डवृत्ति से धारण करना चाहिए। समाज का लक्ष्य मनुष्य का जीवन ठीक करने की ओर है। तत्त्वज्ञानी विश्व समस्त को अखंड भाव से ग्रहण करता है। सामाजिक धर्म से तत्त्वज्ञानी के धर्म में आना हो तो वैराग्य चाहिए। वैराग्य यानी फाँसी की सजा समझना है। उसका अर्थ यह नहीं है कि कुछ ग्रहण-त्याग करना है। सिर्फ अविद्या की निवृत्ति करना है।

अविद्या सत्-असत् से विलक्षण है। अविद्या सत् से विलक्षण है इसलिए द्वैत नहीं बनता। अविद्या असत् से विलक्षण है इसलिए सविशेष जैसी (स्वप्न की नाईं) लगती है। अतः जाग्रत स्वप्न आदि अवस्था बन सकती है लेकिन वह कल्पित है।

श्रीमद्भागवत में निम्नलिखित श्लोक ६ बार आता है।

अर्थेह्याविद्यमानेऽपिसंसृतिर्ननिर्वतते।

ध्यायतोविषयानस्यस्वप्नेऽनर्थागमो यथा॥ (११-२२- ५५)

अर्थ :- वस्तुतः संसार के पदार्थ विद्यमान नहीं होने पर भी उसका चिंतन करते रहने से संसार निवृत्त नहीं होता। स्वप्नमें वास्तविक संपत्ति या विपत्ति का अभाव होने पर भी उसका चिंतन करने से उसकी प्रतीति चालू रहती है। ऐसा जाग्रत में भी बनता है।

अब युक्ति से देखें तो सृष्टि-दृष्टिवाद में सृष्टि आँख से देखने से पहले है। दृष्टि-सृष्टिवाद में दृष्टि काल में सृष्टि की प्रतीति होती है। वह साक्षी भास्य है। वह आँख से देखने की वस्तु नहीं है। संपूर्ण

जाग्रत प्रपंच में दृष्टि समकाल सृष्टि होने से घट आदि देखने में आँख का संबंध घट के साथ नहीं हो सकता लेकिन अविद्या से संबंध होता है। अविद्या गई तो भेद का निषेध सहज में होता है। कल्पित वस्तु से सच्चा द्वैत नहीं बनता। एक ही स्त्री किसीकी चाची, मामी, मौसी या बुआ हो इससे वहाँ चार स्त्रियाँ नहीं बन जाती। नट स्त्री रूप में दिखे तब उसके पुरुष रूपको छुपाता है। और जब पुरुष रूप में दिखे तब स्त्रीके रूपको छुपाता है। फिर भी वहाँ दो जीव नहीं बन जाते, ऐसे ही ब्रह्म में जगत दिखे उससे दो वस्तु नहीं बन जाती। घड़ा ग्रहण करने पर मिट्टी का ग्रहण होता है। इस तरह जगत ग्रहण करने पर ब्रह्म का ग्रहण हो जाता है। वायु निष्पंद हो तब वायु मिट नहीं जाता। और स्पंदन वाला होने पर द्वैत नहीं होता। सूर्य अंधकार का नाश करके प्रकाशित नहीं होता क्योंकि सूर्य ने अंधकार नहीं देखा, वैसे ही आत्मा अविद्या का नाश नहीं करता क्योंकि आत्मा ने अविद्या नहीं देखी। सूर्य ने सूर्यग्रहण नहीं देखा वैसे आत्मा ने अविद्या नहीं देखी। पूर्णिमा के दिन अंधकार छाने लगते ही तुरंत चंद्रदर्शन से अंधकार का नाश होता है वैसे ही शुद्ध चैतन्य में अज्ञान नष्ट होता है। जीव जगत में ब्रह्मबुद्धि से आवरणभंग होता है। ब्रह्म में जीव जगत की बुद्धि से आवरण उत्पन्न होता है। जब क्रिया प्रथम दिखे तब परिणाम दिखता है। जब सत्ता प्रथम दिखे तब परिणाम नहीं दिखता। सत्ता पहले दिखे उसे अनु-ग्रह कहते हैं।

अब सापेक्षवाद के साइंस की दृष्टि से देखें तो उस विषय पर विचार करते हुए प्रो. मिलन कहते है कि :-

Propositions about the state of a system prior to the moment at which it is given are meaningless. A whole range of times and spaces can be assigned to the same event. Once the choice of the scale of time is fixed, the forms of laws will appear to be determinate but as there is no uniform time, there is no determinism in the world.

यानी जिस समय जो घटना घटती है उसको उस समय की दशा से समझनी चाहिए। अलग अलग देखनेवाले उस घटना को अलग अलग देश-काल में रख सकते हैं। एक बार काल का नाप निश्चित हुआ तब उस घटना का प्रारब्ध और उसकी गति निश्चित हुई मालूम पड़ेगी। इस वजह से मनुष्य की दृष्टि से मनुष्य का जगत सच्चा लगता है। लेकिन अन्य दशा में उसका बाध होता है। किसी घटना का निश्चित काल नहीं होता, इसलिए प्रारब्ध सच्चा नहीं है, पुरुषार्थ सच्चा है।

शास्त्र की दृष्टि से देखें तो गीता में कहा है कि (७-९) :

वासुदेवःसर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः

यानी कि सब वासुदेव है ऐसा जानने वाला महात्मा दुर्लभ है। कोई कोई मनुष्य ही ऐसी ज्ञानरूप सिद्धि प्राप्त करता है। इस सिद्धांत पर युक्ति लगाए तो सब जीव एक वासुदेवरूप है। और एक जीव और दूसरे जीव के बीच की खाली जगह भी वासुदेवमय है। इस प्रकार सब वासुदेवमय होने से अनेक जीव नहीं बन सकते। अतः देखनेवाले की दशा ठीक करने की जरूरत है। जैसा स्वप्न में है वैसा ही जाग्रत में है।

वर्तमान साइंस कहता है कि The only events which an observer actually experiences are events at himself. His clock is at himself and records only the epochs of events at himself. Other people's observations are not data for him. Our knowledge about the thoughts and feelings of others is doubtful.

The aesthetic self and the aesthetic objects are the one aesthetic continuum. Within the one aesthetic continuum, there is no distinction between the subjective and the objective. Pure fact is a continuum of ineffable aesthetic qualities, not an external material object.

यानी देखनेवाले को अपने देश-काल ठीक करने की जरूरत है। दूसरे की दृष्टि अलग प्रकार की होती है इसलिए उस दृष्टि का प्रमाण अन्य मनुष्य को काम नहीं आयेगा। भोक्ता और भोग्य(कला) दोनों मिलकर एक क्षेत्र बनता है। उस क्षेत्र में भोक्ता और भोग्य में भेद नहीं रहता। सच्चा भोक्ताअनन्यभाव वाला होता है। इस विषयमें स्व. कवि श्री कलापी लिखते हैं कि :-

'कला भोज्य है मधुर पर भोक्ता बिना कला नहीं,

कलावान कला संग, बिन भोक्ता मिले नहीं।'

सच्चा भोक्ता अथवा दृष्टा, जीव, जगत और ईश्वर को अभिन्न देखता है। ब्रह्मज्ञानी दो प्रकार के होते हैं।

१. सोपाधिक ब्रह्मज्ञानी की दशा उपरोक्त प्रकार की रहती है। उसमें भेद का अभेद करना पड़ता है।

२. निरूपाधिक ब्रह्मज्ञानी जीव-जगत को ब्रह्म में कल्पित मानते हैं, इसलिए वे भेद का निषेध समझते हैं। जैसे स्वप्न की घटनाओं का अभेद नहीं हो सकता वैसे जाग्रत में भी वस्तु एक होने से अन्वय या व्यतिरेक नहीं बन सकता।

फिर भी मनुष्य की दृष्टि से अनेक जीव दिखते हैं। उसका कारण शास्त्र से, युक्ति से और साइंस से बारबार जाँच करने की जरूरत है।

वेदान्त सिद्धांत मुक्तावलि में कहा है (पन्ना-२४) कि एक शरीर में पैर में जो चैतन्य है, वह सिर के चैतन्य में होनेवाले दर्द को नहीं जान सकता इसलिए मनुष्य कहता है कि सिर में दर्द है। पैर में कोई व्याधि नहीं होती। अतः जो चैतन्य जितने देह का अभिमान धारणा करता है उससे उतने देह का भेद होता है।

युक्ति से देखें तो धर्मी का अध्यास हो तब तक कल्पितपना भासता है। जैसे कि रज्जु में सर्प, लेकिन जब धर्म का अध्यास हो तब कल्पितपना जानना मुश्किल होता है। यानी जैसे रज्जु में सर्प के गुण दिखने लगे तब सर्प कल्पित नहीं लगता। वैसे ही जब जीव के धर्म ब्रह्म में देखने में आये तब जीव कल्पित नहीं लगता। स्वप्न के सर्प में भी जब सर्प के धर्म दिखे तब सर्प कल्पित नहीं लगता। अतः देखनेवाले कीदशा ठीक करने की जरूरत है। इस संदर्भ में पश्चिम के एक लेखक कहते है कि :-

In its human aspect, sociality is compatible with physical independence of different attitudes towards oneself, precisely because, the social agent takes all of them except his own attitude in imagination. He does not actually disintegrate into a multiple being, because the imaginative attitudes are only supplementary appendices to the single physical attitude connected with the state of his body. But an event which is physically split into several perspective agencies is a group and not a single event. Furthermore, it is not a group and not a unified group but a sheer multiplicity of appearances.

(Ushenko, in ‘The philosophy of Relativity’)

अर्थात जब हमको अनेक मनुष्यों के विचार आते है, तब दूसरे के जीवन के रूख हमारे प्रति कैसे है, यह याद आता है लेकिन हम (देखनेवाला) स्वयं कैसी दृष्टि से उसे देखते है, यह याद नहीं रहता। अतः अनेक दिखावे बनते हैं। और किसी विषय की सच्ची हकीकत नहीं मिल सकती। सब में चैतन्य एक है। फिर भी शरीर के भावों के विचार से अनेकत्व का दिखाव होता है और उसका कारण देखनेवाले का अज्ञान है। रज्जु में सर्प की भ्रांति के समय कल्पित सर्प की आकृति का अभाव होने पर भी प्रतीत होता है। इसका कारण देखनेवाले के शरीर की अहंता बाहर इदंता की आकृति उत्पन्न करती है। सर्प की आकृति में अस्तित्व प्रकट नहीं हुआ फिर भी रज्जु का अस्तित्व

(इदंता) सर्प के अस्तित्व पर आरोपित होता है। ज्ञान हो तब कल्पित वस्तु और उसके अधिष्ठान की एकता नहीं होती क्योंकि कल्पित का अस्तित्व अधिष्ठान के अस्तित्वसे भिन्न नहीं है।

कोई कहता है कि जगत सबको एक जैसा क्यों दिखता है ? उसका खुलासा करते हुए सिद्धांत मुक्तावलि में (पन्ना-३०) कहते है कि दस मनुष्यों को रज्जू में एक साथ सर्प की भ्रांति हुई वहाँ सब कहते हैं कि हमने एक ही सर्प को देखा। वास्तवमें वहाँ हर एक को अपनी भ्रांति के अनुसार पृथक सर्प दिखते हैं। लेकिन कल्पित वस्तु से वास्तविक अनेकता नहीं होती।

वह सर्प कब आया ? इस प्रश्न की ठीक से जाँच करो। दृष्टि काल में प्रतीति है फिर भी मानों पहले से पड़ा हो ऐसा लगता है। रज्जु का प्राक् सिद्धत्व धर्म सर्प पर आरोपित होता है।

वर्तमान साइंस भी कहता है कि :-

The age of the universe has no objective content. Given an event, we have to mention an observer in whose 'now' it occurs and the ages are different according to the observers chosen. There is no sense in which it can be said that the universe is running down independently of an observer. All these differing possibilities are different description of the same entity-descriptions which originate from the tacit adoption of different scales of time. (Prof. Milne)

अर्थात जगत का कोई निश्चित आयुष्य नहीं है। किसी भी घटना को देखनेवाला कब देखता है उसपर पूरा आधार है। और जैसा देखनेवाले का काल उसके अनुसार वह गिनती करता है। लेकिन वह सिर्फ दिखावा अथवा पर्याय है।

मानस शास्त्र की दृष्टि से देखें तो मनुष्य के संकल्प के अनुसार अथवा मनुष्य के प्राण की गति के अनुसार उसका काल बनता है। लेकिन वे सबके समान नहीं होते। पशु पक्षी के और छोटे जंतु के प्राण की गति अलग अलग होती है। और उससे उनकी घड़ी भी अलग प्रकार की होती है। मनुष्य के काल में भी कैसी गलती होती है- यह जानने के लिए बी. रसेल लिखते है :-

In the dream, remembering has a quality differing from that of the dream perception and in virtue of this quality, the remembering is referred to the past. But the quality is not that of genuine pastness which belongs to the events of history; it is that of a subjective pastness in virtue of which the present remembering is judged (falsely) to refer to something that is objectively past.

यानी स्वप्न में कोई घटना याद आये तब दृष्टि की घटना से स्मृति की घटना अलग होती है ऐसा उस समय लगता है और स्मृति की घटना भूतकाल की लगती है। लेकिन वास्तवमें वह भूतकाल की नहीं है लेकिन वर्तमान काल की होती है। जगने के बाद उसका पता चल जाता है। जाग्रत में भी भूतकाल की घटना वर्तमान काल में याद आती है। भूतकाल में स्वयं था और भविष्य में स्वयं नहीं होगा ऐसा देह के अभिमान को लेकर लगता है। टिरल नामक एक वैज्ञानिक लिखता है कि :-

If the mind which is not anywhere becomes conscious of a vision scene constructed so as to present the surrounding as from a particular point of view in space, it will have the illusion of itself being at that point of space.

यानी मन सूक्ष्म होने से उसका कोई विशेष स्थान नहीं है। फिर भी उसकी नजर के सामने कोई दृश्य आये तो देखनेवाले को एक स्थान पर उसका मन तुरंत रख देता है। पर उससे देखनेवाला उसी स्थान पर है ऐसा निश्चय नहीं हो सकता। सच्चा देखनेवाला आत्मा है और वह सर्वत्र है। फिर भी एक जीव का काम दूसरे जीव से नहीं होता उसका कारण अंतःकरण के भेद में है। आत्मा प्रकाशक है। और अंतःकरण संकल्प आदि का काम करता है। उत्पन्न करना अंतःकरण का कार्य है। अथवा माया का कार्य है। प्रकाश करना आत्मा का कार्य है। अतः सब में एक आत्मा होते हुए भी एक का कार्य दूसरे से नहीं होता।

अंतःकरण और आत्मा इन दोनों में जानने की मुख्य वस्तु आत्मा है। पर मनुष्य आत्मा के बदले अनात्मा को जानने का प्रयास करते हैं। गीता में पंद्रहवे अध्याय में कहा है कि **''वेदश्च सर्वैरहमेव वेद्यो** (१५-१५) अर्थात 'जो कुछ जानने जैसा है उनमें मैं ही एक जानने जैसा हूँ।' क्योंकि एक के ज्ञान से सर्व का ज्ञान होता है। स्वप्न से जगने के बाद सब कौन थे ये देखनेवाले के ज्ञान में समा जाते हैं। अनात्मा के ज्ञान में कैसी भ्रांति होती है – इस विषय की युक्तिपूर्वक जाँच करें तो स्वप्न प्रपंच सिर्फ खुद के संकल्प से उत्पन्न होता है। फिर भी उस समय ऐसा ख्याल आता है कि मैं एक चींटी को भी उत्पन्न नहीं कर सकता। किसीको ऐसा स्वप्न आया कि "मुझे प्यास लगी है, कुआँ है, बाल्टी है लेकिन पानी निकालने के लिए रस्सी नहीं है।" उस समय खुद रस्सी को ढूँढता है। यद्यपि कुआँ, प्यास, बाल्टी यह सब खुदने बनाया है तथापि रस्सी खुद नहीं बना सकता। ऐसे ही मनुष्य का जगत मनुष्य ने अपनी कल्पना से सच्चा मान लिया है। फिर भी खुद कुछ उत्पन्न नहीं कर सकता ऐसा मानता है। उसका कारण यह है कि वह अपना प्रमाण ठीक नहीं कर सकता। जो बनाना हो उसके लिए जो प्रमाण चाहिए वह प्रमाण कैसे तैयार करना यह जानना चाहिए।

यदि अनेकत्व अथवा द्वैत सच्चा हो तो गुरु और शास्त्र व्यर्थ हो जाय। क्योंकि द्वैत का अनुभव तो व्यवहार में हर एक को है। इसलिए द्वैत सत्य है ऐसी बात यदि गुरु और शास्त्र करे तो गुरु और शास्त्र की जरूरत रहेगी नहीं। जो जाना हुआ है उसको जनाये वह प्रमाण नहीं है। ज्ञानी पुरुष द्वैत सच्चा नहीं मानते। अतः अनेक जीव बनते नहीं। किसी एक मनुष्य के सिर में कीड़े पड़े हो, मानों उसका नाम कांतिलाल है; वह एक गाँव से दूसरे गाँव गया। उसके साथ सिर के कीड़े भी जाते है। फिर भी मनुष्य कहते हैं कि कांतिलाल नामक जीव दूसरे गाँव गया है। अतः किस दृष्टि से कौनसी घटना देखी जाती है उस पर पूरा आधार है।

किसी दो गाँवों में दो पंडित रहते थे। एक बार एक पंडित को ऐसी इच्छा हुई कि दूसरे गाँव के पंडित को बुलाकर किसी सिद्धांत पर चर्चा करे। अतः दो तीन प्रश्न भेजकर दूसरे पंडित को आने का आमंत्रण भेजा। दूसरा पंडित अपने प्रमाण के लिए दो बैलगाड़ी पुस्तकें भरकर पहले पंडित को मिलने चला। मार्ग में एक छोटा गाँव आया। वहाँ नदी के तट पर कुछ बच्चे रेत में खेल रहे थे। उसमें से कुछ बच्चों की दृष्टि उस पंडित पर पड़ी। उसके पास दो बैलगाड़ी भरकर पुस्तकें देखी तो बच्चों को हुआ कि इस पंडित को एक प्रश्न पूछते है। फिर सब पंडित के पास गए और पंडित से बोले कि "आप बड़े पंडित हो तो एक उत्तर देते जाओ।" पंडित ने कहा "पूछो तुम्हारा क्या प्रश्न है ?" तो एक बच्चे ने मुट्ठी भर रेत लेकर पूछा कि इसमें रेत के कण कितने हैं यह शीघ्र बता दो, नहीं तो हम बता देते हैं।" पंडित सोच में पड़ गए और उत्तर नहीं दे पाए। आखिर पंडित ने उस बच्चे को कहा कि "तू ही उत्तर दे" इस विषय में मुझे कुछ समझ में नहीं आता। बच्चे ने कहा "इसमें क्या उलझन है, एक मुट्ठी!" इस प्रकार मुट्ठी के प्रमाण से जैसे रेत के कण की गिनती हो गयी, ऐसे ही पुरुषसूक्त में एक पुरुष के वर्णन में जगत के जीव एक स्वरूप में समा जाते हैं,अतः जीव एक है पर स्वप्न के देह की नाईं अनेक लगते है वैसे जाग्रत के देह के प्रमाण से अनेकत्व लगता है लेकिन यह प्रमाण सच्चा नहीं है।

नए साइंस में जैसे वस्तुओं (Objects) को घटना (Event) बना दी गई हैं। वैसे अलग जीव भी एक देखनेवाले कि दृष्टि में वस्तु (object) नहीं है लेकिन घटना (event) है। उस विषय का खुलासा करते हुए बी. रसेल कहते है कि :- The same reasons which lead to the rejection of substance, lead also to the rejection of things and persons as valid concepts.

यानी अनेक जीव सिर्फ कल्पना है। जैसे अपने हाथ और पैर के लिए अलग नाम नहीं दिया जाता। स्त्री के शरीर में गर्भ हो तो उसको अलग नाम नहीं दिया जाता। मनुष्य के शरीर में अनेक छोटे जीव हो तो भी उनके अलग नाम नहीं दिये जाते ऐसे ही अखंड वस्तु एक साथ अनुभव में लेनी

चाहिए। ज्ञानी पुरुष के अंदर खण्डित वस्तु के संस्कार नहीं पड़ते। कोई मूर्ति खण्डित हुई हो तो वह पूजी नहीं जाती।

किसी भी तरह से भेद दूर करना है। ऐसा कोई गुण नहीं है जो अभेद से उत्पन्न न हो और ऐसा कोई दोष नहीं है जो भेद से उत्पन्न न हो। शास्त्र की दृष्टि से देखें तो श्रीमद् भागवत में कहा है कि (११-१०- ३२) जब तक गुण-दोष की बुद्धि रहेगी तब तक नानात्व यानी भेद मालूम पड़ते रहेंगे और जब तक जीव जीव के बीच भेद मालूम पड़ते रहेंगे तब तक परतंत्रता भी रहेगी। जगत में दिखनेवाले विरुद्ध धर्म भेद के ज्ञान के अधीन है। जहाँ भेद नहीं है वहाँ विरुद्ध धर्म नहीं रहते। अनात्माकार वृत्ति ही व्युत्थान दशा है लेकिन अनात्मा कोई वस्तु नहीं है। ऐसा ज्ञान हो तो सहजावस्था बनी रहती है।

इस विषय पर युक्ति से विचार करें और यह मानें कि भगवान ने मनुष्य को पाँच इन्द्रियों के बदले ६ इन्द्रियाँ दी होती तो यह जगत अलग प्रकार का दिखता। किसी टेबल पर चींटियाँ चलती हो और हम वहाँ पाँच उंगली रखें तो टेबल पर पाँच गोलाकार बने और चींटीयों को लगे कि उनके जगत में पाँच जीव जन्मे और दो उंगली उठा ले तो चींटियों को ऐसा लगे कि दो जीव मर गए। लेकिन वास्तव में पाँच जीव जन्मे नहीं है और दो जीव मरे नहीं। हमारी दृष्टि से उसका निश्चय हो जाता है। ऐसे ही मनुष्य को आत्मज्ञान हो तो ब्रह्मदृष्टि से सब अभिन्न होने से किसी के जन्म मरण होते नहीं। जो जीव कहता है कि मैं जन्मा और मुझे इतने साल हुए है उसको भी उसके जन्म के समय मालूम नहीं था कि खुद जन्मा है और मरा हुआ जीव कहता नहीं है कि खुद मर गया। अतः जन्म मरण के विषय में मनुष्य का ज्ञान ठीक करने की जरूरत है। कोई कुत्ता आईने में अपना शरीर देखे तब वहाँ उसको दूसरा सच्चा कुत्ता दिखता है। चिड़िया को भी आइने में दूसरी चिड़िया दिखती है। मनुष्य के जीवन में झूठे 'मैं' से 'तू' होता है। सच्चा मैं सर्वत्र है। अतः ‘तू’ नहीं बन सकता।

स्वप्न में बरसात की गर्जनाऐं, बादलों की गड़गड़ाहट, तोपों की आवाज आदि सुनाई देती हैं लेकिन वास्तवमें उनमें से कुछ होता नहीं है। उसके पासमें ही सोया हुआ मनुष्य उसमें से कुछ भी सुन नहीं सकता। स्वप्न का मनुष्य जगे तब भी उसमें से कुछ रहता नहीं।

As the destruction of dream is complete at the time of waking; so all the effects of ignorance will vanish with the rise of wisdom. यानी जैसे स्वप्नमें से जाग्रत में आने पर स्वप्न का कुछ जगत नहीं रहता वैसे आत्मज्ञान होने पर जाग्रत का जगत रहेगा नहीं। बाह्य दृष्टि से पर्वत का शिखर दिखता है। शिखर पर जाने से शिखर नहीं रहता। नशा उतरने पर नशेवाली दशा के धर्म भी चले जाते हैं। जो भ्रांति रूप हो उसकी उत्पत्ति, स्थिति या लय नहीं होते पर उसका त्रिकालिक निषेध होता है। जाग्रत हुए पुरुष को जैसे उसके स्वप्न संबंधित देश-काल

बाधा नहीं करते, वैसे आत्मज्ञानी को जाग्रत संबंधित देश-काल बाधा नहीं करते। मृगजल देखने का आनंद नष्ट हो उसका शोक ज्ञानी पुरुष नहीं करते।

ऊपर कहे अनुसार विवर्तवाद और एकजीववाद का गहरा संबंध है। विवर्तवाद काल की भ्रांति दूर करता है और एकजीववाद देश अथवा स्थान की भ्रांति दूर करता है। जहाँ काल झूठा है वहाँ देश भी झूठा है। स्वप्न से जगने के बाद स्वप्न का काल झूठा सिद्ध होता है। उसके साथ स्वप्न का स्थान भी झूठा सिद्ध होता है। अतः एक जीव और दूसरे जीव के बीच जो भेद स्वप्न में दिखता था वह भेद जगने पर झूठा साबित होता है। जैसा स्वप्न में है वैसा ही जाग्रत में है। काल का विचार परिणामवाद में आता है। विवर्तवाद में काल नहीं है। स्थान का विचार भी परिणामवाद में आता है। विवर्तवाद में स्थान नहीं है। रस्सी में गलती से दिखनेवाला सर्प कहाँ है ऐसा कहा नहीं जा सकता और कितना समय रहेगा ऐसा भी नहीं कह सकते। जगह और काल अलग नहीं किये जा सकते। आते हैं तो दोनों साथमें आते हैं और जाते हैं तो दोनों साथमें जाते हैं।

ईसवी सन् १९०९ में रशिया के एक सायंटिस्ट मिन्कोवस्की ने एक स्थान पर भाषण देते हुए कहा था कि :-

"From henceforth, space in itself and time in itself sink into mere shadows and only a kind of union of the two preserves any existence".

अर्थात देश और काल अलग नहीं किये जा सकते। जैसे काल दृष्टा (observer) में से निकलता है वैसे स्थान भी दृष्टा में से निकलता है। अतः जो विवर्तवाद स्वीकारते हैं। उन्हें एकजीववाद भी स्वीकारना पड़ता है। एकजीववाद की प्रक्रिया निम्नलिखित है।

१. अज्ञानरूप उपाधि से रहित शुद्ध चैतन्य ईश्वर है।

२. अज्ञान उपहित चैतन्य जीव है।

३. जीव अपने अज्ञान के द्वारा जगत का उपादान कारण है और निमित्तकारण है।

४. इस मत में संपूर्ण दृश्य प्रातिभासिक है।

५. देह के भेद से जीव के भेद की भ्रांति होती है।

६. अज्ञात प्रातिभासिक की सत्ता नहीं है।

७. ज्ञात प्रातिभासिक की कल्पित सत्ता है।

८. इस मत में माया और अविद्या एक होने से अविद्या एक है और इसलिए जीव भी एक है।

९. सुख दुःख की जो उपलब्धि होती है वह अंतःकरण के भेद से होती है क्योंकि कर्ता भोक्ता की उपाधि अंतःकरण है और अंतःकरण अनेक हैं। अतः एकजीववाद में सब शरीरों में क्रियासाम्य और भोगसाम्य नहीं होते।

१०. जगत की रचना ईश्वर नहीं करते लेकिन स्वप्न के हाथी और रथ की नाईं जीव की आश्रित अविद्या जगत की कल्पना करती है।

११. अविद्या का स्वगत चिदाभास के साथ तादात्म्य है इसलिए उसका समस्त कार्य आभास के द्वारा चेतन से अनुगत है।

१२. कर्तृत्व आदि सब धर्मों से विशिष्ट अंतःकरण का आत्मा में अध्यास होने से (स्वप्न की भांति) व्यवहारिक और प्रातिभासिक भेद का पता नहीं चलता। जब ज्ञान से अध्यास दूर होता है तब (स्वप्न से जगने की नाईं) अंतःकरण और उसके धर्म का बाध होता है अथवा जीवन्मुक्त दशा में उसकी प्रतीतिमात्र रहती है।

मुख्य बात यह समझनी है कि देश काल और वस्तु का परिच्छिन्नत्व आत्मा में नहीं रहता। अनात्मा में रहता है। दृष्टान्त के तौर पर :-

१. अत्यन्ताभाव के प्रतियोगीपने का नाम देश परिच्छेद है। जैसे कि घटत्वादी धर्म का पटत्वादि में अत्यन्ताभाव है। इस अत्यन्ताभाव का प्रतियोगीपनाघटादि में है। यही घटत्वादी धर्म में देश परिच्छेद है।

२. प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव का जो प्रतियोगीपना है उसका नाम काल परिच्छेद है। जैसे कि घट का प्रागभाव अपनी उत्पत्ति पूर्व अपने उपादान कारण रूप मिट्टीमें रहता है। घट के नाश के बाद मिट्टी में प्रध्वंसाभाव रहता है। इस प्रकार प्रागभाव और प्रध्वंसाभावका प्रतियोगीपना घट में रहता है। घटमें इस तरह काल परिच्छेद है।

३. अन्योऽन्या भाव के प्रतियोगीपने का नाम वस्तु परिच्छेद है। जैसे कि घट का पट में भेद रहता है और पट का घट में भेद रहता है। यह भेदरूप अन्योऽन्य भाव का प्रतियोगी पना घटमें है। इसका नाम घट एवं पट आदि में वस्तु परिच्छेद है।

इस तरह सर्व अनात्म पदार्थ तीन परिच्छेद वाले हैं। ब्रह्म में अथवा आत्मा में तीनों परिच्छेद में से किसी भी प्रकार का परिच्छेद नहीं रहता।

'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्य: महतोमहियान्'आदि श्रुति में ब्रह्म को विभु रूप अथवा व्यापक रूप कहा है। फिर इस विभु द्रव्य का कोई भी स्थान पर अत्यंताभाव नहीं होता; अतः ब्रह्म में देश

परिच्छेद का संभव नहीं है और **'सत्यंज्ञानमनंतम् ब्रह्म, न जायतेम्रियतेवा कदाचित'** आदि श्रुति में ब्रह्म को उत्पत्ति और विनाश से रहित नित्य कहा है। नित्य वस्तु का प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव नहीं होता। और फिर स्वप्न पदार्थ की नाई सर्व जगत ब्रह्म में आरोपित होने से मिथ्या है। आरोपित वस्तु अधिष्ठान से भिन्न सत्तावाली नहीं होती। अतः अधिष्ठान ब्रह्म ही सर्व का आत्मरूप है। अतः ब्रह्म में वस्तु परिच्छेद भी नहीं बनता। जब ब्रह्म में जीवात्मा के अभेद को विषय करनेवाला **'ब्रह्मैवाऽहमस्मि'** ऐसा अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है तब वैसा ज्ञान होने से जीवात्मा की परिच्छिन्नता की और अब्रह्मपने की निवृत्ति हो जाती है। ऐसा ज्ञान शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को अंत समय में दिया था।

उपरोक्त सिद्धांतों का सार निकालें तो इस प्रकार संक्षेप में बता सकते है :

अनेक जीव की पद्धति	एक जीव की पद्धति
१. व्यावहारिक सत्ता	१. प्रातिभासिक सत्ता
२. अज्ञात सत्ता	२. ज्ञात सत्ता
३. व्यावहारिक वस्तु आँख से दिखती है।	३. सब प्रातिभासिक साक्षीभास्य है।
४. परिणामवाद	४. विवर्तवाद
५. वस्तु आँख से देखने से पूर्व है।	५. दृष्टिकाल में प्रतीति है।
६. सृष्टि-दृष्टिवाद	६. दृष्टि सृष्टिवाद
७. एक अंश की निवृत्ति हो सकती है।	७. आंशिक निवृत्ति नहीं होती।
८. वस्तु साकार होती है।	८. वस्तु निराकार होती है।
९. उत्पत्ति, स्थिति और लय होते हैं।	९. अज्ञानकाल में समकाल प्रतीति और ज्ञानकाल में त्रिकालिक निषेध।
१०. एक के ज्ञान से दूसरे का ज्ञान अधिक अच्छा (सच्चा) हो सकता है।	१०. एक ही ज्ञान सच्चा है।
११. देखनेवाले के विचार के सिवा जगत का विचार हो सकता है।	११. देखनेवाले के विचार के सिवा जगत का विचार नहीं हो सकता।
१२. जगत का ज्ञान रखने में हरकत नहीं है।	१२. कल्पित का ज्ञान तत्त्वज्ञान में प्रतिबंध करता है।

१३. अनेक ज्ञान की सामग्री है।	१३. अनेक ज्ञान की सामग्री नहीं है।
१४. संबंध होता है।	१४. संबंध नहीं होता।
१५. स्वगत भेद रहता है।	१५. स्वगत भेद नहीं रहता।
१६. दृष्टा से दृश्य भिन्न होता है।	१६. दृष्टा से दृश्य भिन्न नहीं होता।
१७. जगत सब को एक जैसा दिखता है।	१७. सब को जगत भिन्न भिन्न अलग दिखता है।
१८. अनेक दृष्टा हो सकते है।	१८. एक दृष्टा का ज्ञान ठीक होनेपर अन्य नहीं रहते।
१९. व्यवहार में द्वैत रहता है।	१९. व्यवहार में कल्पित द्वैत रहता है।
२०. भेद का अभेद करना पड़ता है।	२०. भेद का निषेध करना पड़ता है।
२१.Objects	२१. Event

उपरोक्त पद्धति के अनुसार अनेक जीव प्रातिभासिक होते हैं। स्वप्न स्वप्न के समय व्यावहारिक है, जगने के बाद प्रातिभासिक है। प्रातिभासिक लगने के बाद सब मैं ही था यह जानना सरल है। उस समय स्वप्न के अनेक जीव की भ्रांति निकल जाती है। जाग्रत में भी आत्मज्ञान के समय दृष्टा-दर्शन और दृश्य की त्रिपुटी का बाध होता है।

त्रिपुटी का बाध करने के लिए नए साइंस में निम्नलिखित दृष्टांत दिया जाता है :-

सामान्य व्यवहार में निम्न आकृति के अनुसार तीन प्रकार का संबंध बनता है :-

एक मनुष्य २ पर खड़ा है। वह १ नम्बर पर कोई एक वस्तु देखता है। यहाँ दृष्टा और दृश्य का संबंध हुआ। फिर वह मनुष्य अपनी मान्यता के अनुसार उस वस्तु को अपने से अलग समझकर ३ नम्बर पर रखता है। इस अनुभव में दृष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों है।
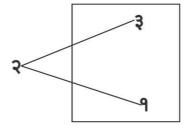
अब सापेक्षवाद की नई खोज होने के बाद तीनों का ऐक्य निम्न आकृति के अनुसार करता है।
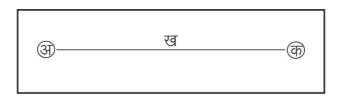
यहाँ अ दृष्टा है। और ख दर्शन की वृत्ति है। पर यह सब एक क्षेत्र के अंदर है। जैसा स्वप्न में है वैसा जाग्रत में है। उसे नए साइंस वाले फील्ड कहते हैं। उस फील्ड (क्षेत्र) के देश-काल देखनेवाले के ज्ञान के अनुसार अनेक प्रकार से बदल सकते है। उस क्षेत्र में बालक हो तो उसके देश-काल अलग रहते हैं, पशु हो तो उसके देश-काल अलग होते है। ज्ञानी हो तो उसके देश-काल अलग होते है। जैसे स्वप्न में सब अज्ञान का खेल है अथवा विपरीत ज्ञान का खेल है वैसे ही जाग्रत में अज्ञानी मनुष्य का क्षेत्र होता है। प्रथम आकृति में सामने जो कुछ अलग दिखता है, वह कोई वस्तु है। दूसरी आकृति में सब मिलाकर एक घटना है। स्वप्न में जो कुछ वस्तु सामने दिखती है वह जगने के बाद वस्तु के रूप में नहीं रहती, लेकिन एक कल्पित घटना थी ऐसा लगता है। जाग्रत में भी ऐसा है। यह सापेक्षवाद के सायंसवाले अब गणित से सिद्ध कर देते हैं। वे कहते हैं कि In this continuum, there is no distinction between subject and object यानी दृष्टा-दृश्य का एक प्रातिभासिक क्षेत्र बन जाता है।

अब शास्त्र की दृष्टि से देखें तो जब आत्मा का अनुसंधान नहीं रहता तभी अनेक जीव जैसा मालूम पड़ता है और जब अनेक जीव जैसा मालूम पड़े तब गुण-दोषयुक्त बुद्धि उत्पन्न होती है। (भागवत ११-७-८ और ११-१०-३२) जो जीव और ईश्वर को अलग मानते हैं वे जीव जीव के बीच भी भेद मानते हैं। वे गुणदोष में पड़ जाते हैं और लड़ाई और झगड़े उत्पन्न करते हैं। पश्चिम के धर्मों की ऐसी हालत है। जो सबमें एक आत्मा मानते हैं वे लड़ाई या दंगे पसंद नहीं करते। वे उसमें भाग नहीं लेते। अतः व्यवहारिक दृष्टि से भी एक जीववाद अत्यंत लाभदायी है।

युक्ति से देखें तो कल्पित धर्म ऐक्य में बाधक नहीं होता क्योंकि जीव-ब्रह्म की एकता के समय कल्पित धर्मों की नि:शेष निवृत्ति होती है। जब कल्पित धर्म है ही नहीं तब बाधक कैसे हो ? व्यवहार में अविद्या कार्यविषयक हो जाती है इसलिए अनेक जीव जैसा भासता है। लेकिन प्रत्यक्ष प्रमाण

अबाधित अर्थ को नहीं बताता। उसका बाध आत्मज्ञान से होता है। जो वस्तु एक ज्ञान से सच्ची लगे और दूसरे ज्ञान से बाधित हो वह मिथ्या है।

रज्जु में बाधित सर्प विद्या-वेद्य नहीं है वैसे अनेक जीव का बाध होने के बाद अनेकत्व जानने योग्य नहीं रहता। स्वप्न से जगने के बाद स्वप्न का अनेकत्व जानने जैसा नहीं रहता। जैसे पशु के ज्ञान में और मनुष्यों के ज्ञान में बड़ा फर्क है वैसे मनुष्य के ज्ञान में और ब्रह्मज्ञान में बड़ा फर्क है।

कोई मनुष्य बाहर जा रहा हो उसको देखकर हमें मानना चाहिए कि मैं जा रहा हूँ, किसीको आता हुआ देखकर यह मानना चाहिए कि मैं आ रहा हूँ। किसी भी तरह से ज्ञान को अन्याकार नहीं होने देना चाहिए। उसको ही अव्यभिचारी भक्ति कहते हैं।

आत्मा की स्वस्वरूप अवस्था में विषय और विषय का ज्ञान प्रतिकूल है। क्योंकि उस प्रकार द्वैत न होने पर भी दिखता है और आत्मा में निष्ठा नहीं होती। आत्म-व्यतिरिक्त वस्तु आत्मा में कल्पित होने से आत्म मात्र-स्वरूप है। इसलिए व्यतिरेक नहीं बनता और अन्वय भी नहीं बन सकता। आत्मज्ञान होने के बाद भूगोल नहीं और इतिहास भी नहीं है।

आत्मा के सिवा अन्य वस्तु का ज्ञान मन और आत्मा का वियोग करता है। उस दशा में द्वैत जैसा मालूम पड़ता है और उससे दुःख होता है। पूर्ण में से कुछ भी कम स्वीकारने से दुःख होता है। ताश के खेल में दस दाने वाले पत्ते की अपेक्षा एक दाने वाले इक्के का मूल्य अधिक है। द्वैत का अदर्शन यह ज्ञानी की उपासना है। वर्तमान में अनेक समाज सेवकों का लक्ष्य मनुष्य के व्यवहारिक जीवन के कल्याण की ओर है। तत्त्वज्ञानी का लक्ष्य मनुष्य के ज्ञान को ठीक करके संपूर्ण विश्व को अभिन्न समझने की ओर होता है। ऐसी दशा में सब विरोधों का अंत आ जाता है।

वर्तमान का साइंस कहता है कि :-

As space is an illusion, the distinction between inside and outside becomes unreal. Distance is defined by certain operations of measurements and not with reference to nonsensical conception such as the amount of emptiness between two points.

यानी एक वस्तु और दूसरी वस्तु के बीच अथवा एक जीव और दूसरे जीव के बीच जो अंतर है, उसका कारण बीच की रिक्त जगह नहीं है, लेकिन एक प्रकार का मेज़र अथवा माया है। जैसे कि नीम का पेड़ मनुष्य को ऊँचा लगता है। बन्दर को नीचा लगता है, मोर, तोता आदि उड़कर तुरंत उस पर बैठ सकते हैं इसलिए पक्षियों को वह बिल्कुल ऊँचा नहीं लगता।

ऐसे ही ज्ञानी पुरुष को जगत बहुत छोटा लगता है। और अभिन्न लगता है। स्वप्न में एक जीव और दूसरे जीव के बीच की जगह माया से उत्पन्न होती है। वह कोई सच्ची वस्तु नहीं है। ऐसे ही जाग्रत की जगह के बारे में समझना है। माया को दूर कर सकें तो जैसे स्वप्न में दो जीव नहीं रहते, वैसे जाग्रत में भी नहीं रहते। फिर भी व्यवहारिक दृष्टि से अनेक जीव लगते हो वहाँ दृष्टि बदलकर सत्ता एक ही है अर्थात् सिर्फ भगवान ही है,ऐसा भक्त लोग मानते हैं। यानी एक कमरे में अनेक प्रकार के आईने हो वहाँ कोई मनुष्य जाए तो उनमें लंबे छोटे अनेक शरीर दिखाई पड़ते हैं, फिर भी वहाँ वास्तवमें एक जीव है। रासलीला के प्रसंग में भी शुकदेवजी राजा परीक्षित को कहते है कि "भगवान की वह लीला ऐसी थी कि मानों भगवान अलग अलग आइनों में अपना स्वरूप देखते हो। इस कथा के आधार पर भक्त लोग एक ऐसी कथा कहते हैं कि एक बार श्री कृष्ण वृंदावन में अपने महल की छत पर घूम रहे थे। उस समय उनके मन में ऐसा विचार आया कि मेरे भक्त मेरा मुखारविंद देखकर आनंदित होते हैं तो मेरा स्वरूप कैसा होगा यह मैं देखूं। ऐसा सोचकर उन्होंने एक बड़ा आईना मगवाया। उसको हाथ में रखकर उसमें अपना मुख देखते हुए छत पर घूम रहे थे। इतने में आईना उनके हाथ से नीचे गिर गया और उसके अनेक टुकड़े हो गए। उन टुकड़ों के देखने पर उनमें अनेक कृष्ण दिखने में आये। वैसे ही सृष्टि के समय मानों भगवान के हाथ में से आयना गिर गया है और आईने के जितने टुकड़े हुए उतने जीव हुए। इससे अनेक जीवों का दिखावा हुआ पर वास्तवमें जीव एक ही है। श्रीमद भागवत में कहा है कि माया अनेक रूप वाली होने से अनेक जीव जैसा दिखता है लेकिन वास्तवमें जीव एक ही है। (२-९-२ और ११- ७- ८)

लेकिन कोई ऐसा प्रश्न करे कि आईना तो जड़ है और जीव तो स्वतंत्रता से घूमते है। एक जीव घूमता हो तब दूसरा जीव बैठा हुआ होता है। उसका कारण यह है कि देखनेवाला स्वयं को देह के अभिमान के कारण एक स्थान पर उपस्थित मानता है। योग-सिद्धियों वाले योगी परकाया प्रवेश करके दूसरे शरीर को भी अपनी इच्छा अनुसार चला सकते है।

अनेक जीव होने के लिए सच्चे देश-काल के भेद चाहिए। वर्तमान का साइंस कहता है कि देश-काल जगत में नहीं है पर जगत के साथ हमारे संबंध में प्रतीत होते हैं। वह संबंध माया वाले होने से देश-काल भी माया के अंदर है।

तत्त्व में यानी अधिष्ठान में देश-काल के भेद नहीं है अतः अनेक जीव नहीं बन सकते। शेष एक जीव रहता है। उसे ब्रह्म, परमात्मा अथवा भगवान कहते हैं। (भागवत १-२-११) इतना ज्ञान पक्का होने के बाद यदि ध्यान किया जाय तो ध्यान में ब्रह्म ही आएगा, क्योंकि अन्य कुछ भी नहीं है ऐसा निश्चय किया हुआ होता है। इससे ध्यान अच्छा होता है और अच्छा और सच्चा अनुभव भी होता है। ऐसे ज्ञानी पुरुष ध्यान करते है तो एक का अनुभव होता है और ध्यान छोड़ते है तो भी एक का अनुभव होता है।

निमेषार्थं न तिष्ठन्ति वृत्तिर्ब्रह्ममयीविना ।

यथा तिष्ठन्तिब्रह्माध्या: सनकादय: शुकादयः ।। (अपरोक्षानुभूति)

ज्ञानी पुरुषों की वृत्ति ब्रह्माकार के बिना एक क्षण भी नहीं रहती । ब्रह्मा, सनकादि और शुकदेवजी आदि ऐसी वृत्ति से रहते थे। अनात्म पदार्थ आत्मा के अज्ञान से मालूम पड़ता है ऐसे ही अनेक जीव भी आत्मा के अज्ञान से मालूम पड़ते है। अज्ञान दूर होने पर अन्य का प्रश्न नहीं रहता। जेन्टिले नामक एक अच्छे लेखक लेखक कहते है कि :

When we compare two or more acts, we ought to notice that we are not in that actuality of the soul in which multiplicity is unity, for, in that actuality the comparison is impossible. Number cannot enter into the nature of what cannot be objectified.

अर्थात् जब कोई मनुष्य दो घटनाओं की या दो जीवों की तुलना करता है तब उसको आत्मज्ञान नहीं होता। आत्मा सबमें एक होने से तुलना अथवा बराबरी नहीं हो सकती। जो वस्तु दृश्य नहीं हो सकती उसमें संख्या नहीं रह सकती।

वेदान्त में जीव का अर्थ करने में शुद्ध चेतन और अज्ञानरूप उपाधि ये दो लिए जाते है। उनमें शुद्ध चेतन एक है और सर्वव्यापक है लेकिन उपाधि रूप अज्ञान एक है या अनेक उस विषय में दो मत हैं। जो लोग व्यावहरिक सत्ता मानते हैं वे कहते हैं कि अज्ञान अनेक है क्योंकि एक जीव का मोक्ष होने से सब का मोक्ष नहीं होता यानी दूसरे बंधन में रह जाते है। और फिर वे यह भी कहते हैं कि बृहदारण्यक उपनिषद् में यह कहा है **कि 'इन्द्रोमायाभिःपुरुरुपईयते'** अर्थात् परमात्मा अज्ञानों के द्वारा अनेक रूप में प्रतीत होते है। इस बात पर विचार करने पर इस प्रकार खुलासा हो सकता है :-

१. अनेक अज्ञान हो तो एक अज्ञान और दूसरे अज्ञान के बीच खाली जगह चाहिए और एक का अज्ञान जाने के बाद दूसरे का रह जाय उसके लिए काल भी चाहिए।

२. स्थान और काल कहाँ से आये इस विषय पर उपनिषद् में ठीक से खुलासा मिल नहीं सकता। काल की उत्पत्ति के लिए भी काल चाहिए। अतः श्री शंकराचार्य के भाष्य में बारम्बार 'ईव' शब्द आता है इसलिए अनेक अज्ञान जैसा लगता है। वास्तवमें अज्ञान सच्चा नहीं है तो उसमें अनेकता कहाँ से आयेगी !

३. स्वप्न में अनेक मनुष्य दिखते हैं उन सबके अज्ञान की गिनती करें तो अनेक अज्ञान दिखते हैं, लेकिन हम जग जाय तो अनेक मनुष्य नहीं रहते और अनेक अज्ञान भी नहीं रहते।

४. जहाँ अनेक नहीं रहते वहाँ एक का मोक्ष होने के बाद दूसरे बंधन में रहते है, यह प्रश्न गलत है क्योंकि उस दशा में अनेक नहीं है।

५. जो व्यवहारिक सत्ता को प्रातिभासिक मानते हैं, वे एक अज्ञान मानते हैं और यह बात आज के साइंस से मिलती-जुलती है। जगह और काल दृष्टा (observer) की भूमिका के अनुसार प्रतीत होते है। उसे दृष्टा के स्थान धर्म कहते हैं। वह सापेक्ष है। अतः अनेक अज्ञान नहीं बनते और अनेक जीव नहीं बनते।

६. ऊपर कहे अनुसार जो वस्तु प्रातिभासिक हो और दृश्य नहीं हो सकती उसमें संख्या नहीं बन सकती।

७. यदि द्वैत झूठा है तो सर्व की मुक्ति का प्रश्न झूठा है अथवा जिनको अनेक जीव दिखते हो और उनका क्या होगा ऐसे विचार आते हो वे स्वप्न में हैं। अतः अनेक जीव की व्यवस्था जैसी स्वप्न में है वैसी जाग्रत में है। उसके लिए श्री कृष्ण भागवत में कहते हैं :

'यावान्नानार्थधिः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः।

जागर्त्यपी जागत्र्यपिस्वप्नज्ञ: स्वप्नेजागरणं यथा ॥(११-१३-३०)

अर्थ :- जब तक युक्तियों के द्वारा पुरुष की भेदबुद्धि निवृत्त नहीं होती तब तक अनेक देखनेवाले अज्ञानी जाग्रत होते हुए भी स्वप्न में हैं। जैसे स्वप्न अवस्था में विषयों का अनुभव होने के कारण जाग्रत की भ्रांति होती है वैसे जाग्रत में भी विषयों (प्रातिभासिक होने पर भी) का अनुभव होने के कारण अनेकत्व की भ्रांति होती है। इसलिये अंतिम उपाय के रूप में श्री कृष्ण कहते हैं

दृष्टिंततःप्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्ण- स्तूष्णींभवेन्निजसुखानुभवोनिरिहः।

सन्दश्यते: क्व च यदीदमवस्तुबुद्धयात्यक्तंभ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानीपातात ॥

अर्थ:- इसलिए मायिक प्रपंच से दृष्टि हटाकर तृष्णारहित होकर, मौन रहकर, निजानंदपूर्ण और निष्ठावान हो जाना, फिर यद्यपि (आहार आदि देह की क्रिया के समय) प्रपंच की प्रतीति होगी तो भी उसे अवस्तु समझकर छोड़ी हुई होने से वह पुनः भ्रांति उत्पन्न कर नहीं पायेगी। यानी जब तक देह रहेगा तब तक प्रपंच की प्रतीति होती रहेगी।

स्वप्न-प्रपंच से जागे हुए मनुष्य को उस प्रपंच में आसक्ति नहीं है वैसे ही ब्रह्मज्ञानी को जाग्रत-प्रपंचमें आसक्ति नहीं होती। द्वैत का भान ब्रह्म के आनंद को रोकता है। अद्वैत का भान होने के बाद ब्रह्म के आनंद को रोकने वाला कोई नहीं है।

भान अथवा ज्ञान का स्वभाव कैसा है-इस विषय पर योगवासिष्ठ में (उपशम प्रकरण सर्ग - २७) कहा है कि "चैतन्य के सिवा किसी पदार्थ की सत्-ता (सत्ता) नहीं है। जो चैतन्य है वह सूर्य को 'यह सूर्य है' ऐसा जानेगा नहीं तो सूर्य और अंधकार का परस्पर भेद कैसे उपलब्ध होता ? उल्लू दिनमें सूर्य को नहीं जानते तो उसके प्रति सूर्य की सत्ता कितनी रहेगी ? चैतन्य यदि पृथ्वी को यह पृथ्वी है ऐसा न जाने तो पृथ्वी और जल आदि का परस्पर भेद क्या रहेगा ? मछली पानी से बाहर निकलते ही मर जाती है और मनुष्य पानी में डूबे तो मर जाता है। चैतन्य यदि दिशाओं को ये दिशाएं हैं ऐसा नहीं जानेगा तो दिशाओं का दिशापना कैसे रहेगा ? गहरे समुद्र में घूमनेवाली मछलियोंके ज्ञान में दिशा जैसा कुछ नहीं होता। चैतन्य यदि पर्वतों को "ये पर्वत है" ऐसा जाने नहीं तो पर्वत में पर्वतपना क्या रहेगा ?" स्वप्न के ज्ञान के पर्वत जाग्रत के ज्ञान से सत्ता विहीन हो जाते हैं। चैतन्य यदि आकाश को यह आकाश है ऐसा न जाने तो आकाश में आकाशपना क्या रहेगा ? पक्षी आकाश में पानी की नाईं तैरते हैं। चैतन्य यदि स्थूल शरीर को यह स्थूल शरीर है ऐसा न जाने तो प्राणियों के स्थूल शरीर में स्थूल शरीर जैसा क्या रहेगा ? मनुष्य के शरीर में रहनेवाले सूक्ष्म जीवों के ज्ञान में मनुष्य का शरीर नहीं है। चैतन्य के ज्ञान के बिना कुछ भी सिद्ध नहीं होता। इसलिए जो कुछ भी है वह चैतन्य ही है। इंद्रियाँ चैतन्य है, शरीर भी चैतन्य है, मन भी चैतन्य है; मन की तृष्णाएँ भी चैतन्य हैं, भीतर चैतन्य है, बाहर भी चैतन्य है,असत् पदार्थ चैतन्य हैं और रज्जु सर्प आदि अनिर्वचनीय पदार्थ भी चैतन्य हैं। स्वप्न में वह सब दिखता है और जगने के बाद ऐसा लगता है कि वह सब एक ही ज्ञान के स्वरूप थे। यानी सब नहीं थे, एक ही था। चैतन्य में अन्यत्व की कल्पना की संभावना ही नहीं है। अतः जगत में मित्र की क्या संभावना और शत्रु की क्या संभावना ? चैतन्य यदि यह द्वेष है ऐसा नहीं जानेगा तो द्वेष भी कौनसा पदार्थ है ? जब तक सिंध का मुल्क हिन्द में था और पाकिस्तान का नाम नहीं था और पाकिस्तान का ज्ञान नहीं था तबतक उन दोनों देशों के बीच द्वेष था ही नहीं। अतः द्वेष की सिद्धि भी चैतन्य के ज्ञान के बिना नहीं होती और राग की सिद्धि भी राग के ज्ञान के बिना नहीं होती। बच्चों को स्त्री में राग नहीं होता। संक्षेप में भेद के ज्ञान के बिना भेद सिद्ध नहीं होते और भेद का ज्ञान अथवा द्वैत का ज्ञान मायावाला है। इस बात का निश्चय करने में सूक्ष्म बुद्धि की जरूरत पड़ती है। इस विषय पर एक जिज्ञासु ने हमको निम्नलिखित प्रश्न लिखकर भेजा था :-

"सौराष्ट्र में 'आत्मधर्म' नामक पत्र प्रसिद्ध होता है। उसमें निम्नलिखित हकीकत प्रसिद्ध हुई है। इस विषय को आपकी दृष्टि और समझ का प्रकाश देकर स्पष्ट करें:-

कुछ जीवों का अभिप्राय ऐसा है कि जगत में सर्वव्यापी एक ब्रह्म है और अन्य जो दिखनेवाला दृश्य है वह सब भ्रांति है। वास्तविक वह कोई पदार्थ नहीं है। जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम होता है वैसे यह सब भ्रम है। उनका यह अभिप्राय झूठा है- क्योंकि यदि रस्सी में सर्प का भ्रम हो तो सर्प

का अस्तित्व अन्यत्र है कि नहीं ? यदि सर्प का जगत में अन्यत्र कहीं अस्तित्व ही न हो तो सर्वथा असत् पदार्थ की रस्सी में कल्पना कैसे होगी ? नहीं होगी। रज्जू को सर्प मानना यह भ्रम है क्योंकि रज्जू में सर्प का अभाव है लेकिन सर्प में सर्प का अभाव नहीं है। जगत में तो सर्प का अस्तित्व है। इस प्रकार आत्मा में शरीर आदि अजीव पदार्थों का अभाव है। लेकिन जगत में उनका अभाव नहीं है। अजीव पदार्थ का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व तो है ही, वह सर्वथा भ्रम अथवा असत नहीं है। लेकिन उस अजीव को अपना मानना यह भ्रम है। जैसे जगत में भिन्न भिन्न अनेक आत्मा हैं वैसे भिन्न भिन्न पदार्थ भी हैं। जगत में रज्जू है, सर्प भी है और रज्जू को सर्प मानने की भ्रांति भी है। इस विश्व में अनेक जीव पदार्थ भी हैं और भ्रांतिरूप जीव की विकारी दशा भी है। अर्थात् जीव,अजीव और जीव की भूल ये तीनों सिद्ध होते हैं।"

उपरोक्त प्रश्न के विषय में निम्नलिखित स्पष्टीकरण हो सकते हैं :-

१. पहली बात यह समझनी है कि रज्जू में किसीको सर्प नहीं दिखता लेकिन रज्जू का अज्ञान सर्प रूप में दिखता है। रज्जू का ज्ञान हो तो सर्प रहेगा नहीं। ऐसे ही ब्रह्म में जगत दिखता नहीं है लेकिन ब्रह्म का अज्ञान ही जगत के रूप में दिखता है। ब्रह्म का ज्ञान हो तो जगत रहेगा नहीं।

२. सर्प का अस्तित्व अन्यत्र है इसलिए रज्जू में सर्प दिखता है, यह बात सच्ची नहीं है। ऐसा हो तो अन्य स्थान पर (सर्प के साथ) रहनेवाली पेड़ की डाली, आदि भी साथ में ही दिखने चाहिए। मुख्य बात यह सिद्ध करनी है कि जहाँ (रज्जू के स्थानपर) सर्प दिखता है वहाँ सर्प हैं कि नहीं। जब रस्सी का ज्ञान होता है तब रस्सी के स्थान पर दिखे हुए सर्प का बाध होता है, अन्य स्थान पर रहा हुआ सर्प बाधित नहीं होता।

३. जो सर्प दिखता है वह दृष्टि के काल का सर्प है। दूसरे स्थानपर देखा हुआ सर्प स्मृति का सर्प है। दृष्टि के समय के ज्ञान में और स्मरण के ज्ञान में बड़ा फर्क है। दृष्टि का ज्ञान वर्तमान काल का है। स्मरण का ज्ञान भूतकाल का है। रज्जू के ज्ञान के समय दृष्टि का सर्प बाधित होता है, स्मृति का सर्प बाधित नहीं होता। अतः यहाँ अन्य स्थान के सर्प का प्रश्न लेना गलत है। सिद्धांत में ब्रह्म में जगत दिखता है। वह जगत जहाँ दिखता है वहाँ है कि नहीं यह प्रश्न है। वह दृष्टि का जगत है। दूसरे स्थान का यहाँ प्रश्न नहीं है वैसे ही स्मृति के जगत का भी यहाँ प्रश्न नहीं है। क्योंकि ब्रह्मज्ञान जिसको हो उसकी दृष्टि के जगत का बाध होता है। उसके लिए दूसरे जगत का प्रश्न नहीं रहता।

४. भ्रांति में शायद पूर्व प्रतीति की जरूरत पड़े तो भी पूर्व प्रतीति सच्ची होनी चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है। कल देखे हुए जगत के संस्कार से आज जगत दिखे तो भी कल सच्ची दृष्टि से जगत देखा था ऐसा सिद्ध नहीं होता।

५. पूर्व प्रतीति न हो फिर भी भ्रांति हो सकती है। जैसे कि किसी एक मनुष्य ने किसी अंधे को भूत की बात कही। उस अंधे ने दूसरे अंधे को भूत की बात सुनाई। इस तरह बीस अंधों तक भूत की बात फैली। फिर कभी घर के नरिये के खड़खड़ाने से बीसवां अंधा डरा और उसने सब अंधों को भूत की बात कही। फिर भी किसी अंधे ने भूत प्रत्यक्ष देखा नहीं। अतः पूर्व प्रतीति के बिना भी भ्रांति हो सकती है।

६. पूर्व में कहीं सर्प देखा न हो लेकिन सर्प की बात सुनी हो अथवा सर्प का चित्र देखा हो तो भी रज्जू में सर्प की भ्रांति हो सकती है।

७. रज्जू में सबको सर्प नहीं दिखता, लेकिन किसीको दंड, किसीको माला, किसीको पानी का रेला (छोटा बहाव) दिखता है। ऐसे ही प्रत्येक देखनेवाले को ब्रह्म में अपनी कल्पना के अनुसार जगत दिखता है।

८. पूर्व में किसी स्थान पर सर्प देखा हो और उसके ज्ञान के संस्कार से रज्जू में सर्प दिखा ऐसा माने तो भी प्रथम मनुष्य को सर्प का ज्ञान कैसे होता है और वह ज्ञान सच्चा है कि नहीं उसकी जाँच करनी चाहिए। नवजात शिशुको सर्प का ज्ञान नहीं होता। एक सर्प को दूसरा सर्प (भयजनक) सर्प नहीं लगता। मोर की दृष्टि में सर्प (भयजनक) नहीं है। सिर्फ मनुष्य के जगत में जन्मे हुए मनुष्य को दूसरे मनुष्य सर्प का ज्ञान देते हैं तब सर्प का ज्ञान होता है। ब्रह्मज्ञानी मनुष्य सर्प को सर्प नहीं मानते पर अपना स्वरूप मानते हैं, अतः ज्ञान ठीक करना सीखना चाहिए।

९. रज्जू में जब सर्प की भ्रांति हो तब रज्जू का अज्ञान होता है। उसके साथ सामने कुछ इदंता (अपने से भिन्न यह) के रूप में पड़ा है ऐसी इदंता की भ्रांति प्रथम होती है, फिर उसमें सर्प की भ्रांति होती है। यदि इदंता की भ्रांति निकल जाये तो सर्प की भ्रांति रहेगी नहीं। ऐसे ही सिद्धांत में यदि इदंता की भ्रांति निकल जाये तो ब्रह्म में जगत की भ्रांति भी निकल जाय। इदंता की भ्रांति होने का मुख्य कारण यह है कि जीव अपने से भिन्न कुछ देखता है। ऐसा ज्ञान देह के अभिमान से आता है। स्वप्न अवस्था वाला जीव अपने से भिन्न कुछ देखता है उसका कारण स्वप्न देह का अभिमान है। वह देह का अभिमान जाग्रत होने पर छूट जाता है। उसके साथ स्वप्न की इदंता भी चली जाती है। ऐसे ही यदि जाग्रत के देह का अभिमान छूट जाये तो जाग्रत की इदंता अर्थात् अपने से भिन्न कुछ रहता नहीं है।

१०. देखनेवालेसे भिन्न कुछ (इदंता) दिखने का दूसरा कारण दृष्टा और दृश्य के बीच खाली जगह है। वह खाली जगह किसने बनाई और कैसे हुई, उस विषयपर यूरोप और अमेरिका आदि देशों के विद्वान सापेक्षवाद के द्वारा (गणित) से अच्छा खुलासा दे सकते हैं। उस खोज पर करीब २५,००० नई पुस्तकें लिखी गयी हैं। उसके आधारपर देश(space) और काल (time) सापेक्ष हो

गए हैं। उसमें दृष्टा, दर्शन और दृश्य का एक साथ विचार किया जाता है। इस प्रकार विचार करनेपर बाहर की वस्तुएं (objects) के रूप में नहीं रही लेकिन घटना (events) बन गयी हैं। यह सब उन्होंने गणित से सिद्ध किया है। इसलिए यह सर्वमान्य सिद्धांत हुआ है। इस सायंसवाले कहते हैं कि :-

Perceptual space is within the perceptual event and perceptual time is within the perceptual event.

यानी दर्शन के समय के देश-काल दर्शन के अंदर है। इसलिए सच्ची इदंता नहीं बनती। अतः इदंता भ्रांतिरूप है। इसलिए ब्रह्म में जगत भी भ्रांति रूप है और अनेक जीव भी नहीं बन सकते।

११. अजीव यानी जड़ पदार्थों का विचार करें तो उसमें इस प्रकार सिद्धांत बन सकता है :-

(अ) जड़ पदार्थ स्वयं अपना अस्तित्व सिद्ध नहीं कर सकते। कुर्सी नहीं कहती कि वह स्वयं कुर्सी है। अतः जड़ पदार्थ को स्व-सत्ता नहीं है। उसका अस्तित्व उसको देखनेवाला सिद्ध करता है।

(क) उपरोक्त कथन के अनुसार इदंता भ्रांतिरूप है। अतः जड़ पदार्थ भी भ्रांतिरूप है।

(ख) छोटी उम्र में ऊँचा लगनेवाला चबूतरा बड़ी उम्र में छोटा लगता है अतः पत्थर के चबूतरे का आकार नहीं है। आकार हो तो बदलना नहीं चाहिए। उसका आधार उसको देखनेवाले पर है। अतः सब जड़ प्रातिभासिक है यानी मिथ्या है।

१२. मिथ्या यानी बिल्कुल झूठा नहीं पर अमुक दशा में सच्चा जैसा लगे और दूसरी दशा में उसका बाध हो। जैसे कि स्वप्न स्वप्न के समय सच्चा लगता है। और जाग्रत होनेपर उसका बाध होता है इसलिए स्वप्न मिथ्या कहा जाता है। ऐसे ही जाग्रत जाग्रत के समय सच्चा है। पर उसका बाध स्वप्न में होता है, निद्रा में होता है, मूर्च्छा में होता है और ब्रह्मज्ञान के समय भी होता है।

१३. उपरोक्त कथन अनुसार स्वप्न की इदंता का जाग्रत में बाध होता है वैसे जाग्रत की इदंता का ब्रह्मदशा में बाध होता है। इदंता का बाध होता है इसलिए अनेक जीव नहीं बन सकते। 'मैं' का बहुवचन नहीं होता। 'मैं' का बहुवचन करें तो 'हम' होगा और 'हम' में 'तू' और 'वह' लेना पड़ेगा। स्वप्नमें अनेक जीव दिखते हैं फिर भी जाग्रत होने पर एक जीव रहता है। वैसे ही जाग्रत में जब अनेक जीव दिखे तब भ्रांति की शुरुआत होती है। ब्रह्मदशा में अनेक नहीं रहते। श्री रमण महर्षि जैसे वर्तमान काल के संतपुरुष अपने अनुभव से उसका निश्चय कराते हैं। स्वप्न के समय स्वप्न की भूल का पता नहीं चलता। उसका कारण यह है कि स्वप्न का ज्ञान स्वप्न के जगत को सिद्ध

करता है। इसलिए उस दशा में भूल खोजना मुश्किल होता है। जिस प्रमाण से अनेक जीव लगते हैं वह प्रमाण सच्चा है कि नहीं उसकी जाँच करनी चाहिए।

१४. किसी एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के बारे में पर्याप्त ज्ञान नहीं मिल सकता और मिले तो भी अपने ज्ञान के अनुसार जानना पड़ता है। अतः सिर्फ अपना ज्ञान ठीक करने की जरूरत है। ऊपर कहे अनुसार दो जीव के बीच दिखनेवाली खाली जगह कहाँ से आयी और उस जगह विषयक ज्ञान सच्चा है या नहीं उसकी जाँच करनी चाहिए। जगह और काल ये स्वतन्त्र द्रव्य अब नहीं रहे। स्वप्न में दो जीव के बीच दिखनेवाली जगह जाग्रत होनेपर चली जाती है और स्वप्न के जीव का काल भी जाग्रत होने पर चला जाता है, अतः देश और काल कल्पित है लेकिन स्वप्न की अवस्था के समय चालू रहते हैं।

१५. वर्तमान साइंस कहता है कि देश और काल जगत में नहीं है लेकिन देखनेवाले के साथ जगत का जो सम्बन्ध होता है उसमें मालूम पड़ते हैं। देखनेवाले के विचार के सिवा जगत का विचार नहीं हो सकता और देखनेवाले के प्रमाण का विचार होने पर जगत प्रातिभासिक हो जाता है। प्रातिभासिक वस्तु में ज्ञात-सत्ता रहती है। वह दृष्टि उस काल में ही रहती है। अतः वह साक्षीभास्य है और आत्मज्ञान होनेपर उसकी सविशेष निवृत्ति होती है। यानी ब्रह्मज्ञान के समय जगत का त्रिकालिक निषेध होता है। अतः अनेक जीव भी नहीं रह सकते।

१६. आत्मा में शरीर आदि अजीव पदार्थ नहीं है यह जैन धर्म में माना हुआ है और वेदान्त में भी माना हुआ है। क्योंकि एक अधिष्ठान में विरुद्ध धर्म नहीं रह सकते। फिर भी जगत में अजीव पदार्थ क्यों दिखते हैं ? उसका कारण जगत में अजीव पदार्थ हैं यह नहीं है, लेकिन मनुष्य की दृष्टि से अजीव पदार्थ दिखते हैं ऐसा कह सकते है। मनुष्य की दृष्टि से मनुष्य का जगत सच्चा है लेकिन मनुष्य की दृष्टि यानी मनुष्य का प्रमाण सच्चा नहीं है। कोई मनुष्य भक्तिभाव से अजीव मूर्ति की पूजा करे तो उसकी भावना के अनुसार उसमें चेतन मालूम पड़ता है। ऐसा अनेक मूर्तियों के बारे में हुआ है। इसीलिए मूर्तियाँ पूजी जाती है। अतः जड़ दृष्टि से जड़ दिखता है और चेतन दृष्टि से चेतन दिखता है।

१७. अतः जगत सत्य है कि मिथ्या है, यह प्रश्न अपूर्ण है। कांतिलाल को वर्तमान के ज्ञान से जो जगत दिखता है वह सच्चा है कि मिथ्या है यह प्रश्न लेना चाहिए। उसका उत्तर यह है कि कांतिलाल के ज्ञान के अनुसार कांतिलाल का जगत सही है लेकिन उसका ज्ञान बदलने पर उसकी दृष्टि के अनुसार जगत दिखेगा। कांतिलाल मरकर मोर हो तो मोर की दृष्टि का जगत रहेगा। और कांतिलाल ब्रह्म हो तो ब्रह्म व्यापक होने से भिन्न कुछ रहेगा नहीं। अतः अहं-इदं रहेगा नहीं और उससे जीव या जगत रहेगा नहीं क्योंकि उस समय स्थान धर्म की दृष्टि रहेगी नहीं। स्वप्न से जगने

के बाद स्वप्न का जीव, स्वप्न के कर्म अथवा स्वप्न के जगत रहते नहीं, वैसे ही ब्रह्मज्ञान होने पर जाग्रत का जीव, उसके कर्म और जाग्रत का जगत नहीं रहते।

श्रीमद राजचंद्र भी कहते है कि :-

कोटि वर्ष का स्वप्न भी जाग्रत होते लय हो

तैसे विभाव अनादि का ज्ञान होते विलय हो ॥

१८.मिथ्यात्व यानी बिल्कुल झूठा नहीं। मिथ्यात्व के कुछ प्रकार निम्नलिखित बन सकते है :-

(अ) जो सत् असत् से विलक्षण हो उसे मिथ्या कहते हैं।

(क) जहाँ जो दिखता है वहाँ वह परमार्थ से नहीं है, अथवा अपने स्वरूप से नहीं है।

(ख) ज्ञान से जो निवर्त्य हो वह मिथ्या है।

(ग) जिस स्थानपर जो परमार्थ से नहीं है अथवा अपने स्वरूप से नहीं है वहाँ उसका जो दिखावा मात्र है वह मिथ्या है।

(घ) ज्ञान की सच्ची वस्तु के सिवा अन्य जो कुछ है वह मिथ्या है।

(ड़) तीन अवस्था के विचार से जाग्रत अवस्था का जगत मिथ्या है यह सिद्ध हो सकता है।

(च) सापेक्षवाद के साइंस से भी जगत मिथ्या हो सकता है।

(छ) मिथ्यात्व का संक्षिप्त अर्थ इतना ही है कि जो आत्मा के अविचार काल में सच्चे जैसा लगे और आत्मज्ञान के समय उसका बाध हो।

रज्जू का ज्ञान होने पर सर्प का नाश नहीं होता लेकिन सर्प तीनों काल में नहीं था ऐसा ज्ञान होता है। स्वप्न से जगने के बाद स्वप्न का नाश नहीं होता पर स्वप्न तीनों काल में मिथ्या था ऐसा ज्ञान होता है। जाग्रत का जगत भी ब्रह्मज्ञान से नष्ट नहीं होता लेकिन जगत तीनों काल में नहीं है ऐसा ज्ञान होता है। फिर भी स्वप्न की नाईं जाग्रत के ज्ञान के समय जैसा ज्ञान हो वैसा जगत प्रतीत होता है, लेकिन वह ज्ञान (यानी वह प्रमाण) सच्चा नहीं है। ब्रह्मज्ञान से उसका बाध होता है। सिर्फ प्रतिभास स्वरूप आरोपित सर्प, सर्प के ज्ञान के पूर्व नहीं रहता। इसलिए वह आँख से देखने की वस्तु नहीं है। आँख से देखी हुई वस्तु दृष्टि से पहले वहाँ पड़ी हुई होती है। रज्जू में देखा हुआ सर्प, सर्प के ज्ञान से पहले वहाँ नहीं था, इसलिये वह सर्प प्रातिभासिक है और साक्षीभास्य

है। कांतिलाल का जगत भी कांतिलाल को जगत का ज्ञान हुआ उससे पहले नहीं था। यानी कि कांतिलाल के ज्ञान से कांतिलाल को जो जगत दिखता है वह वैसा ज्ञान होने से पहले नहीं था। देखनेवाले को छोड़कर जगत का विचार नहीं हो सकता। देखनेवाले के साथ जगत का विचार हो तब भी देखनेवाले का ज्ञान कैसा है उसकी जाँच करनी चाहिए। कांतिलाल का जन्म हुआ तब उसको मालूम नहीं था कि जगत किसे कहते हैं। फिर मनुष्य के बीच रहकर मनुष्यों ने जैसा ज्ञान दिया वैसा उसने सीख लिया और वह उसका प्रमाण हो गया। प्रमाण को परिमाण (नाप) भी कहते हैं। दर्जी नाप के अनुसार कपड़े बनाता है लेकिन नाप गलत हो तो सब कपड़े फिट नहीं होते। अतः प्रमाण अथवा नाप (अथवा मनुष्य का ज्ञान) ठीक करने की जरूरत है। विशेषकर देश-काल विषयक मनुष्य का ज्ञान (मनुष्य का प्रमाण) सच्चा है कि नहीं उसके लिए पश्चिम के अनेक विद्वान भी गलती में पड़े थे और इसविसन् १९०५ में प्रो. आईन्स्टाइन ने उनकी गलती बताकर सच्चा सिद्धांत दिया। इससे सबको बहुत आश्चर्य हुआ है। इस विषय पर इस पुस्तक के लेखक ने ३० वर्ष तक अध्ययन करके एक पुस्तक 'देश और काल' लिखा है । वह 'सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय' (अहमदाबाद) की ओर से प्रकाशित हुआ है। हाल में वेदान्त आश्रम ट्रस्ट, वलाद में उपलब्ध है। किसी मत का आग्रह रखे बिना इस साइंस का अध्ययन करने जैसा है।

इस साइंस के अनुसार देश-काल सापेक्ष होने से किसी घटना का परिणाम नहीं होता। हर एक घटना के साथ उससे संबंधित देश-काल रहते हैं। अतः जगत ब्रह्म का विवर्त है। चेतन का परिणाम नहीं होता, क्योंकि चेतन निर्विकारी है। जड़ का परिणाम नहीं होता, क्योंकि जड़ को स्व-सत्ता नहीं है। परिणाम को देखने हेतु कोई चाहिए और उस देखनेवाले का ज्ञान सच्चा है कि नहीं उसकी जाँच करनी चाहिए। स्वप्न में अनेक परिणाम दिखते है और स्वप्न के समय वह स्वप्न नहीं है फिर भी जाग्रत के ज्ञान से उसका बाध होता है। जाग्रत के जिस ज्ञान से परिणाम दिखता है वह भी स्वप्न जैसा है। वर्तमान साइंस परिणामवाद का अनुमोदन नहीं करता। प्रत्यक्ष प्रमाण सच्चा नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण अबाधित अर्थ को नहीं बताता। द्वैत के अनुभव के लिए विषय चाहिए तो स्वप्न की नाईं कल्पित विषय मिल सकते हैं लेकिन पारमार्थिक अनेकत्व नहीं मिल सकेगा। पारमार्थिक अनेकत्व के लिए खाली जगह (space) चाहिए। वर्तमान साइंस के जनक प्रो. आइंस्टाइन कहते हैं कि The structure of space is not really determined until the functions of the coordinates are known. अर्थात् जब तक हमारा ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेयरूप में परिणाम प्राप्त नहीं करता तब तक स्थान का निश्चय नहीं हो सकता। स्वप्न में इस बात का निश्चय होता है। काल भी ऐसी कल्पित क्रिया से उत्पन्न होता है। वेदान्त के सिवा अन्य मतमें देश और काल को स्वतंत्र द्रव्य माने गए है। इसलिए उन मतों में अनेक जीव बन सकते हैं। वेदान्त में और सापेक्षवाद के नए साइंस में देश और काल को कल्पित माने हुए हैं। इससे विवर्तवाद और एक जीववाद सिद्ध होते है।

एक बार अहमदाबाद में सत्संग के लिए एक सभा मिली थी। सभा में एक मनुष्य ने हमसे ऐसा प्रश्न पूछा था कि "प्रथम अकेला ब्रह्म था तो उसमें से जीव और जगत कैसे बने ?" हमने उसको उत्तर दिया कि "प्रथम अकेला ब्रह्म था और अन्य कुछ भी नहीं था यह ज्ञान तुमको कैसे हुआ ?" उस प्रश्न का उत्तर वे नहीं दे पाए। क्योंकि ब्रह्म का ज्ञान हुए बिना उन्होंने प्रश्न किया था। इस प्रश्न में काल का प्रश्न है। जब तक दो घटनाओं के बीच का क्रम नहीं जानने में आता तबतक काल की उत्पत्ति नहीं होती। ऐसा क्रम जानने के लिए ज्ञाता स्वयं प्रथम घटना के समय और दूसरी घटना के समय उपस्थित होना चाहिए और उसका नाप बदलना नहीं चाहिए। वर्तमान का साइंस कहता है कि काल का क्रम सापेक्ष है। एक ही घटना एक मनुष्य को भविष्य में लगे और वही घटना दूसरे मनुष्य को वर्तमान में लगती है। दृष्टान्त के तौर पर मुम्बई में एक ट्रेन दादर से मुंबई सेंट्रल स्टेशन पर जाये तो ड्राइवर को मुंबई सेंट्रल भविष्य में लगे और उसके ऊपर विमान में कोई उड़ता हो तो उसको मुंबई सेंट्रल स्टेशन वर्तमान काल में लगे। अतः काल का क्रम सच्चा नहीं है। इससे जीव या जगत की उत्पत्ति नहीं बनती। इसलिए प्रश्नकर्ता को जो दिखता है उसका ज्ञान उसको कैसे होता है यह पहले निश्चय करना चाहिए। जिस घटना के साथ जिस मनुष्य का ज्ञान जुड़ा हुआ रहे उस घटना का असर उसपर होता है। उस समय देश-काल भी नये प्रकार के बनते हैं।

सापेक्षवाद पर उशेंको नामक एक लेखक लिखता है कि :- status of actuality or potentiality of a perceived region depends not so much on the region itself as on the mode of the percipient's reaction to it.

यानी कि जो जगत जिसको दिखता है, वह जगत सब के लिए वैसा है यह नहीं कह सकते। देखनेवाले का जगत उसकी दृष्टि के अनुसार रहता है।

बृहदारण्यक उपनिषद् के दूसरे अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में कहा है कि जो मनुष्य ब्राह्मण जाति अथवा क्षत्रिय जाति को अपने आत्मा से भिन्न जानता है उसको वह जाति दूर करती है। जो आत्मा से स्वर्गादि को भिन्न जानता है उसे स्वर्गादि दूर करते है। जो आत्मा से देवताओं को भिन्न जानता है उसे देवता दूर करते हैं। जो आत्मा से कुछ भी भिन्न जानता है वह उसे दूर करता है। वास्तवमें आत्मा ही सर्वरूप है।

अब इस बात का युक्ति से विचार करें और पशु की दृष्टि और ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि का विचार किया जाय तो निम्नलिखित विचार हो सकता है।

१, कोई बिल्ली का बच्चा अपनी पूंछ के साथ अनेक प्रकार के खेल खेलता है। यदि हम उसकी दृष्टि से देखने की आदत बनाये तो उसके अनेक फोटो लिए जा सकते है। उसमें अनेक नाटक बनते हो ऐसा देखा जाएगा। उसमें हास्य का भाव और करुणा का भाव भी मालूम पड़े।

शायद वह बच्चा उस दृश्य के साथ कुछ बात भी करता हो, फिर भी वास्तवमें वहाँ सिर्फ एक ही जीव है। फिर भी पशु की दृष्टि के समय उसके खेल में अनेक जीव हो अथवा पूंछ एक अलग जीव हो और उसके साथ वह खेलता हो ऐसा मालूम पड़ता है।

२. ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि से देखें तो श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ रासलीला में उनको ऐसा नहीं लगता था कि मैं दूसरों के साथ खेल रहा हूँ। उनको ऐसा लगता था कि मैं अपने साथ ही खेल रहा हूँ। ऐसे खेल में साधारण मनुष्य की दृष्टि से दूसरे जीव होने के बावजूद भी श्रीकृष्ण की दृष्टि में दूसरे जीव नहीं थे। लेकिन यह बात ठीक से समझने के लिए ब्रह्मज्ञानी बनना चाहिए। उल्लू को उल्लू ही रहकर दिन में प्रकाश नहीं दिख सकता।

उपरोक्त प्रथम दृष्टांत में दो जीव नहीं है फिर भी पशु को दो दिखते हैं और दूसरे दृष्टांत में मनुष्य की दृष्टिसे अनेक जीव दिखते हैं फिर भी ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि में एक जीव है।

भेद के विषय में अधिक खुलासा टी. एच. हक्सली अपने निबंध में इस प्रकार करते है :-

I get the ideas of co-existence of number of distance and of relative place or direction. But all these ideas are ideas of relations and may be said to imply the existence of something which perceives those relations. If a tactile sensation is a state of the mind and localization of that sensation is an act of the mind, how is it conceivable that a ' relation between two localized sensations should exist apart from the mind. Thus it seems clear that the existence of some of the primary qualities of matter such as number and extension apart from mind is as utterly unthinkable as the existence of colour and sound under like circumstance. Will the others, viz:- figure, motion and rest and solidity withstand similar criticisms ? I think not. For all these like the foregoing are perceptions by the mind of relations of two or more sensations to one another. If distance and place are inconceivable in the absence of the mind of which they are the ideas, the independent experience of figure which is the limitation of distance and of motion which is change of place must be equally inconceivable.

अर्थात् जब कोई देखनेवाले की दृष्टि में अनेक प्रकार के भेद और अनेक प्रकार के संबंधवाली गति देखने में आये तब वहाँ पर सिर्फ मन और बाहर के जगत का संबंध रहा हुआ होता है। यदि स्पर्श का ज्ञान मन इंद्रियों के द्वारा करता हो तो भिन्नपने का ज्ञान भी मन इंद्रियों के द्वारा करता

है। ऐसे ही बाहर की दो वस्तु के भिन्नत्व का ज्ञान भी मन से होता है। अतः संख्या का ज्ञान और देश-काल का ज्ञान भी मन से ही होता है। जैसे नाम और रूप माया में अथवा मन से रहे हुए है वैसे आकार, गति, स्थूलता आदि भी माया में अथवा मन में रहे हुए हैं। सब प्रकार के संबंध मन से होते हैं। स्थान, दूरी, संख्या आदि देखनेवाले के मन से होने से देखनेवाले से भिन्न कोई स्वतंत्र व्यक्ति अथवा जीव नहीं बन सकते।

इस बात का निश्चय हमे स्वप्न में बिलकुल स्पष्ट होता है लेकिन स्वप्न के समय गलती का पता नहीं चलता। हम उस समय दूसरे स्वतंत्र जीव हो ऐसे उनसे बातें करते हैं। यह उपरोक्त बिल्ली के बच्चे का उसकी पूंछ के साथ खेलने जैसा है। जाग्रत में जो मनुष्यों का मन बिल्ली के बच्चे जैसा होता है उनको अनेक जीव दिखते हैं। जिनका मन श्रीकृष्ण जैसा हो उनको एक जीव दिखता है। पर ब्रह्मदशा प्राप्त हुए बिना श्रीकृष्ण का जीवन समझमें नहीं आएगा। बिल्ली मनुष्य की दृष्टि का जगत नहीं समझ सकती। अतः दृष्टि मार्जन करने की जरूरत है। ऐसे कठिन विषय को समझने के लिए :-

१. बड़े शहरों में नहीं रहना चाहिए।

२. सत्संग में अथवा एकांत में रहकर आत्मा का अनुभव लेना चाहिए।

३. झूठे सुख से वैराग्य आना चाहिए।

४. शिक्षा में बदलाव आना चाहिए।

५. सच्चे विचार की आदत डालनी चाहिए।

६. ज्ञेय की ओर ध्यान देने की अपेक्षा ज्ञान की रीत सुधारने की ओर ध्यान देना चाहिए।

७.सापेक्षवाद (Theory of relativity) का अध्ययन करना चाहिए।

इतना कार्य होगा तो मालूम पड़ेगा कि Nirgun Brahma denies differences and Sagun Brahma unites difference - यानी निर्गुण ब्रह्म भेद का निषेध करता है और सगुण ब्रह्म भेद का अभेद करता है। दोनों का परिणाम एक आता है। फिर भी सापेक्षवाद का नया साइंस प्रथम मत का समर्थन करता है।

मांडूक्य उपनिषद् पर श्री गौडपादाचार्य की कारिका है। उसमें चतुर्थ प्रकरण में जलती मशाल का दृष्टांत देकर समझाया है, कि मशाल को घुमाएं तब वृत्ताकार में अथवा दूसरे आकार में जो धर्म दिखते हैं, वे अन्य किसी स्थान से उसमें नहीं आते और उसे स्थिर करने पर वे धर्म अन्य किसी स्थानपर चले नहीं जाते क्योंकि दूसरे द्रव्य का अभाव है। ऐसे ही सिर्फ चेतन एक ही तत्त्व है। जड़

को स्व-सत्ता नहीं है, इसलिए अनेक जीव बनने में कोई निमित्त नहीं रहता। सिर्फ देखनेवाले का ज्ञान ठीक करने की जरूरत है। जैसा स्वप्नमें है वैसा जाग्रत में है।

ॐ ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ